॥२१७॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

मानस-नृत्य

पुणे (महाराष्ट्र)

कबहुंक फिरि पाछें पुनि जाई । कबहुंक नृत्य करइ गुन गाई ॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥

|| रामकथा ||
मानस-नृत्य
मोरारिबापू
पुणे (महाराष्ट्र)
दिनांक : ०२-०५-२०१५ से १०-०५-२०१५
कथा-क्रमांक : ७७६
प्रकाशन :
मई, २०१६

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org
कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट
संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com
राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क -सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com
ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

'मानस-नृत्य' के रूप में पुणे (महाराष्ट्र) में दिनांक २-५-२०१५ से १०-५-२०१५ दरमियान रामकथा का गान किया। ओशो की निर्वाण-भूमि एवं समाधि-स्थलि में बापू ने इस रामकथा द्वारा ओशो को अंजलि समर्पित की और साथ ही स्पष्ट भी किया कि ओशो के सभी विचारों से मैं सहमत नहीं हूं। और न होना ये मेरी निजता है। मैं ओशो का संन्यासी नहीं हूं। मेरी माला मेरे गुरु की माला है। लेकिन ओशो के जो-जो विचार जीवन को आंतरिक विकास और विश्राम दे उसकी कृतज्ञता तो प्रगट करनी ही होगी। महाराष्ट्र में वारकरी सम्प्रदाय में नृत्य किया गया है और ओशो ने भी नाचते हुए धर्म की उद्घोषणा की है, उसका जिक्र करते हुए बापू ने कहा कि मेरा 'रामचरित मानस' देखता हूं तो उसमें भी यत्र-तत्र नृत्य के समारंभ पड़े हैं। इसलिए मैंने निर्णय किया इस कथा में मैं 'मानस-नृत्य' पर बोलूंगा।

'रामचरित मानस' में कौन-कौन नृत्य करता है, कौन किसको नृत्य करवाता है, कौन किसके सामने नाचता है, कौन क्यों नाचता है? इन सारें सवालों के परिप्रेक्ष्य में बापू ने अपने विचार प्रकट किये।

'नृत्य कला भी है, विद्या भी है और अध्यात्म भी है।' ऐसा सूत्रात्मक निवेदन भी बापू ने किया और बापू का ऐसा कहना भी हुआ कि कोई भी कला कलाकार को भी बांध देती है और कला देखनेवालों को-सुननेवालों को भी बांध देती हैं। नृत्य कला मिटकर जब विद्या बन जाती है तब नर्तक खुद भी मुक्त होता है और दर्शक को भी मुक्त कर देता है। और नृत्य की महिमा करते हुए बापू ने ऐसा सूत्रपात भी किया कि नृत्य जब कला मिटकर विद्या बन जाय और विद्या मिटकर अध्यात्म बन जाय तो नृत्य भी परमतत्त्व को पाने का राजमार्ग है।

बापू ने 'आत्मा नर्तक:।' जैसे सूत्र का विशद विवरण किया। स्थूल-दैहिक नृत्य, थोड़ा सूक्ष्म मन का नृत्य और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म आत्मा के नृत्य का भेद भी प्रस्तुत किया। तो आत्मा की चार विभावना के मुताबिक विधिनृत्य, विशालनृत्य, विधुनृत्य और शिवनृत्य जैसे चार प्रकार के नृत्य का परिचय भी दिया।

व्यापक पश्चाद् भू में नृत्य का दर्शन करते हुए बापू ने ऐसा भी कहा कि ये हवा चलती है तो नृत्य करती है। सरिता बहती है तो नृत्य करती है। किरणें अपनी अदा से नृत्य करती धरती पर आती है। चांदनी नृत्य करती विस्तरती है। एक अभागा मानवी है कि नृत्य भूल गया!

पुणे की भूमि में गाई गई इस 'मानस-नृत्य' रामकथा के माध्यम से मोरारिबापू का नृत्य विषयक दर्शन व्यक्त हुआ। और समांतर विभिन्न विषय पर व्यक्त ओशो के विचारों का प्रसाद भी मिलता रहा।

– नीतिन वडगामा

नृत्य भी अध्यात्म का एक मार्ग है

मानस-नृत्य ॥१॥

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ।।

बाप! बहुत सालों के बाद फ़िर एक बार महाराष्ट्र की ये पुणे नगर की भूमि में रामकथा के माध्यम से आप से मिलना हो रहा है। मैं प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। आप सब जानते हैं कि ऐसे आध्यात्मिक प्रसंग व्यक्ति निश्चित नहीं करता, अस्तित्व निश्चित करता है। इसलिए योग, लगन, ग्रह, वार, तिथि अनुकूल होते हैं तब कभी घटना घटती है।

ज्ञानेश्वर महाराज को स्मरूं। जगद्गुरु तुकाराम को याद करूं, एकनाथ महादेव; किन-किन को याद करूं? शिवाजी महाराज को याद करूं। महामुनि विनोबाजी को याद करूं। भारतरत्न सूरस्थ पंडित भीमसेन जोशी अथवा तो यहां की समग्र संगीत-परंपरा को याद करूं। 'राम क्रिश्न हरि', 'राम क्रिश्न हरि' का एक महामंत्र इस भूमि पर गुंजा, ये समग्र वारकरी संप्रदाय को याद करूं। भगवान पंढ़रिनाथ को स्मरूं।

केनाल में बहता जल सुगठित में बहता है लेकिन नदी जब बहती है तो अपनी निजता में बहती है। ऐसी एक धारा इस पुणे की भूमि पर आई जो धारा ओशो ने बहाई। इसका प्रेम-स्मरण करूं। और इरादा मेरा साफ़ कर दूं कि मेरे मन में इसलिए पुणे में कथा का मनोरथ रहा कि अब जब भी पुणे में कथा गाउंगा तो मेरे दिमाग में मुझे ओशो को रामकथा के द्वारा एक अंजली समर्पित करनी है। ओशो के सभी विचारों से मैं सहमत नहीं। और न होना ये मेरी निजता है। इसमें मेरी कमज़ोरी हो सकती है। लेकिन हमारे परम स्नेही सत्यवेदांतजी ने जो उसके बारे में कहा कि एक विद्रोही प्रवाह बीसवीं सदी का एक बुद्धपुरुष ओशो; उसका भी मुझे स्मरण करना है। मैं ओशो संन्यासी नहीं हूं। मेरी माला मेरे गुरु की माला है। लेकिन ओशो के जो-जो विचार जीवन को आंतरिक विकास और विश्राम दे उसकी कृतज्ञता तो प्रगट करनी ही होगी। ये इमानदार आदमी का कर्तव्य है। मैं नियमित उसका पाठक भी नहीं और श्रावक भी नहीं। मुझे कभी कोई उसकी किताब, उसके विचार, मेगज़िन दे दे तो मैं पढ़ता हूं। रूबरू भी मैंने आप को सुना है। जब आप आचार्य रजनीशजी थे तभी शिवाजी पार्क में 'श्रीमद् भगवद्गीता' के दशवें अध्याय 'विभूतियोग' पर आप के प्रवचन चल रहे थे। उस समय मुंबई में मैं भी नव दिन के लिए कहीं बोल रहा था। फ़िर एक बार पुणे सुनने के लिए आया। तब वो भवगान भगवता प्राप्त महापुरुष के रूप में उद्घोषित हुए थे।

मेरा ओशो संन्यासीओं के साथ प्रेम-संबंध रहा। मैं पुणे की एक कथा में तो ओशो के एक बहुत बड़े संन्यासी-परिवार पति-पत्नी दोनों ओशो से दीक्षित थे। नव दिन मैं वहां रहा। हमारा विचार-विमर्श चलता रहा। और मेरी

रामकथा की एक अच्छी श्रोता पुणे में रहकर ओशो को बराबर पचा रही थी। अब तो नहीं रही आदरणीय श्रद्धा माँ। बिलकुल ओशो के रंग में लेकिन रामकथा के प्रति भी उनकी श्रद्धा थी, अद्भुत थी! एक कथा में तो आयोजन के अंतर्गत भी वो आशीर्वाद के रूप में उपस्थित रही।

परम स्नेही आदरणीय सत्यवेदांतजी से भी हमारा सत्संग का नाता रहा। मैं आप को याद करते हुए कई बार मेरे हजारों श्रोताओं को ये बात कहता रहा, जो एक बार आप ने महुवा में, हम बैठे थे खाना खाने से पूर्व एक चर्चा चली और हमारे मुंबई के विनुभाई मेहता ने प्रश्न किया था। और विनुभाई का अपना एक भाव था वो भी ओशो के विचारों से बहुत निकट रहते थे। बात चल रही थी और विनुभाई ने आप से प्रश्न पूछा कि आप जिसको सद्गुरु कहते हैं ओशो को उसने तो ये किया, ये किया, फलां किया, ये हुआ, ये निंदा ऐसा-ऐसा किया! तब ये प्रश्न जब विनुभाई ने छेड़ा तब मैं आतुर था कि जब आप जिसको सद्गुरु कहते हैं, मानते हैं, चालीस साल से आप दीक्षित है और सही में है, तो मैं सोच रहा था आप क्या जवाब देंगे गुरु के बारे में? और आप ने उस दिन फ़रमाया था कि विनुभाई, मेरे सद्गुरु ने क्या किया उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं, लेकिन उसने मेरे साथ क्या किया इसके साथ मेरा लेना-देना है। मेरे पर जो हुआ इसकी चेतना का प्रभाव। मेरे कहने का मतलब ऐसा एक महापुरुष आदमी जनम जहां ले उसकी तो महिमा होती है जन्मस्थल की, लेकिन आदमी जब निर्वाण प्राप्त करता है तब तो पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त कर जाता है। इसलिए इस भूमि पर ओशो ने निर्वाण स्वीकार किया और यहां आप की समाधि है।

मेरे मन में था, मैं ओशो के स्मरण में रामकथा गाउं। 'मानस'के मंत्रात्मक सूत्रावलि में उनके विचार कहां-कहां मिलते हैं उसको लेकर कभी न कभी ऐसे महापुरुषों का मेरी वाणी के द्वारा उनका स्मरण करना चाहता हूं। हर जगह पर मैं बहुत लोगों पर इस तरह बोला। रमण महर्षि के आश्रम पर गया तो रमण पर बोला। अरविंद के आश्रम में गया तो अरविंद पर बोला। विवेकानंद के पास गया तो उस पर बोला।

ये तो मेरे मन की बात। प्रश्न ये उठा कि इस कथा का केन्द्र बिंदु क्या रखूं? किस सूत्र के इर्द-गिर्द मैं बोलूं? ओशो कहते थे ध्यान मूल है, प्रेम फूल है। ये भी विचार आया कि ध्यान पर बोलूं। लेकिन यहां हनुमंत प्रेरणा से समझ में आया, जिस भूमि पर महाराष्ट्र में वारकरी संप्रदाय ने नृत्य किया-

विठ्ठल, विठ्ठल, विठ्ठला,
माझा विठ्ठल पांडुरंगा...

यहां नृत्य किया गया और ओशो ने नाचते हुए धर्म की उद्घोषणा की। मेरा 'रामचरित मानस' देखता हूं तो यत्र-तत्र नृत्य के समारंभ पड़े हैं। मैंने निर्णय किया इस कथा में मैं 'मानस-नृत्य' पर बोलूंगा।

ओशो स्वयं कहते थे प्रवचन पूरा होते कि चलो, आख़िर में कीर्तन किया जाय। नृत्य भी अध्यात्म का एक मार्ग है। शंकर भगवान के बारे में 'रामचरित मानस' में लिखा है-

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ।।

शंकर भगवान ध्यान करते हैं तो तुलसी कहते हैं, ये शुष्क ध्यान नहीं था, ये ध्यान रस था। मैंने स्वयं देखा है अपनी आंखों से, यहां ध्यान करते हुए लोग नर्तन भी करते।

तो, इस कथा का केन्द्रीय बिंदु होगा 'मानस-नृत्य।' हनुमान भी नृत्य करता है। मीरां नृत्य करती है। देवर्षि नारद नृत्य करता है। मधुवन में राधिका भी नृत्य करती है। व्रजांगनायें नृत्य करके कृष्ण का साक्षात्कार करती हैं। मैंने जैसा देखा। ओशो जब बोलते थे तब उनकी वाणी भी नर्तन करती थी, उनकी बोली नर्तन थी। उनकी वाणी गद्य नहीं थी, पद्य थी। मैं सब विचार नहीं समझ पाया आप के। और जरूरी भी नहीं कि सब समझ

पायें। जो अपने को आंतरिक विकास और विश्राम के लिए अनुकूल पड़े वो ले लो, मौज़ करो और उनका नाम लेकर कृतज्ञता प्रगट करो। मैं ओशो संन्यासीओं को, ओशो प्रेमीओं को, ओशो को फोलो करनेवाले को राजी करने के लिए नहीं हूं। मैं पहले दिन डिकलेर कर रहा हूं कि नव दिवसीय कथा आख़िर में पूर्ण रूप में ओशो की समाधि को समर्पित कर दूंगा।

'रामचरित मानस' में कौन-कौन नृत्य करता है, कौन किसको नृत्य करवाता है, कौन किसके सामने नाचता है, कौन क्यों नाचता हैं इनकी विध-विध विधायें हैं। और मूल में तो 'राम क्रिश्न हरि' का जो नर्तन है। यहां के संतों ने पांडुरंग को गाया। सुंदर ढ़ंग से मेरा राम भी नृत्य करता है और 'शिवसूत्र' आदि ग्रंथों में तो कहा है, 'आत्मा नर्तक:।' आत्मा भी एक नर्तक है। आत्मा स्वयं नर्तक है।

परमतत्त्व राम अवतार ने रिहर्सल किया था। कृष्ण ने मंच पर प्रोग्राम पेश कर दिया। राम नर्तक है। मेरे पास प्रमाण है। आदमी की अंत:चेतना ही उनका प्रमाण होता है। ये हवा चलती है तो नृत्य करती है। सरिता बहती है तो नृत्य करती है। किरणें आती है तो अपनी अदा से नृत्य करती धरती पे आती है। चांदनी विस्तरती है तो नृत्य करके आती है। एक अभागा मानवी है कि नृत्य भूल गया! परंपराओं की जंज़ीर ने उनके पैरों को बांध दिया!

'नारदभक्तिसूत्र' में कहा है कि जिसके परिवार का कोई सदस्य हरिनाम कीर्तन करता है तो उनके पितृ भी नृत्य करने लगता है। किसी भी बुद्धपुरुष को ठीक से सुनने-समझने में समझने के बाद पचाने के लिए चाहिए व्यक्ति के पास श्रवणविज्ञान। जो आज की दुनिया खो चुकी है! प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा पृथ्वी पर भेजता है तब कर्णविज्ञान देकर भेजता है और एक संवेदना का कवच देकर पृथ्वी पर भेजता है। कभी-कभी घटनाएं ऐसी घटती है कि समाज के इन्द्र भिक्षुक बनकर आदमी के श्रवणविज्ञान को छीन लेता है! ऐसा श्रवणविज्ञान एक संत के पास है 'रामचरित मानस'में। कभी-कभी बुद्धपुरुष को समझने के लिए श्रवणविज्ञान चाहिए। ये नहीं होता इसलिए हम गेरसमज़ करते हैं। ओशो क्यों बोले? कृष्णमूर्ति क्यों बोले? बुद्ध के निवदनों में क्यों संगति नहीं मिलती?

कथाओं में आओ तो परमात्मा ने जो दिए हैं वो कान के कुंडल लेकर आना, प्लीज़। तभी शास्त्र अथवा तो बुद्धपुरुष के वचन बिलकुल उसी रूप में हम समझ सकते हैं। और घटना 'क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा।' भरद्वाज ऋषि के आश्रम में भरतजी आये तो सभी ने भरतजी की सराहना की। यहां तक सराहना की गई कि आज तक हमनें तीर्थ में बैठकर जो साधना की है उसका फल रामदर्शन था लेकिन हे भरतजी, रामदर्शन के बाद हम सोच रहे थे कि रामदर्शन का फल क्या? भरद्वाजजी कहते हैं, इसका फल क्या होगा उसका आज जवाब मिला। रामदर्शन के फल का फल है संत का दर्शन।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं ।

साधु कौन? कि जिसकी प्रशंसा की जाय तो उसके कान संकोच अनुभवे और दूसरे की बात आए तो अधिक हर्ष हो जाय। यहां भरतजी का कोई प्रतिभाव नहीं है। सब लोग भरतजी से पूछने लगे कि हम आप की रीत समझ नहीं पाये तो भरतजी ने कहा, मैंने प्रशंसा सुनी ही नहीं। सुनता हूं तो मेरे राघव की ही प्रशंसा सुनता हूं। ये है कर्णविज्ञान का तरीका। ओशो ने भी उसके पर प्रकाश डाला है। जो बोले सो हरि कथा।

भगवान शंकर के बारे में भी एक बात कही जाती है। शंकरजी को कहते है कि आप का चेला रावण। तो 'रावण' सुनते ही शंकर को समाधि लग जाती थी, ध्यानरस में डूब जाते थे। और कोई कहते कि आप की देवी भवानी के कई रूप हैं और नवदुर्गा है उसकी नवरात्री पूजी जाती और 'रात्रि' कोई बोले तो शंकर को फिर समाधि लग जाती। 'रात्रि' शब्द सुनते ही शंकर को

महासमाधि लग जाती थी। जब गिरिजा ने पूछा तो कहते हैं। मैं तो 'रा' सुनते ही समाधि में लग जाता हूं। उसके बाद का किसने सुना? कोई भी 'रा' से शुरू होनेवाला शब्दब्रह्म शिव के कान में जाता था तो शंकर समाधिस्थ होते थे। ये है कर्णविज्ञान।

'नृत्य' शब्द कई बार 'मानस' मैं आया है। आदमी तीन प्रकार से नृत्य करता है। एक तो दैहिक नृत्य होता है। जो देह की मुद्राओं के द्वारा फ़िर कथ्थक हो, भरत नाट्यम् हो। नृत्य की कोई भी विधा हो। बहुत अपने-अपने अंगों के द्वारा ये मुद्रायें ली जाती है, रूप लिए जाते हैं, बोल बोले जाते हैं और शरीर को केन्द्र में बनाकर नर्तन होता है। दूसरा नृत्य होता है थोड़ा सूक्ष्म और वो नृत्य है मन का नृत्य-

मन मोर बनी थनगाट करे...

थोड़ा सूक्ष्म है कि मन मोर बनी थनगनाट करे। और बिलकुल सूक्ष्म से भी अंतिम सूक्ष्म है 'आत्मा नर्तक:।' और ओशो ने भी उन सूत्रों पर बोला है।

आत्मा नर्तक: धैर्यकंथा श्रीपान पादुका:।

तो, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म यदि कोई नृत्य है तो वो आत्मा का नृत्य है। आत्मा नाचती है। तो वाणी से नृत्य करना है। आंसुओं से नृत्य करना है। मुस्कुराहट से नृत्य करना है। गाके नृत्य करना है। बैठे-बैठे नृत्य करना है।

मैं क्या करता हूं? मैं थोड़ा स्पीकर हूं? मैं भी नर्तक हूं। मैं वाणी से नृत्य करता हूं। बोलने का अभिमान भी होता है। व्यासपीठ मिल जाय और अभिमान से मुक्त होना बहुत मुश्किल है। 'रामचरित मानस' में एक चौपाई है-

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं ।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ।।

पद मिलने के बाद मद ना आये जिस पर अपने बुद्धपुरुष की पूर्ण कृपा हो।

भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।

अस्तित्व प्रमाण कि भरत को राजमद नहीं हो सकता। चाहे ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पद मिल भी जाये तो भी।

वाणी जब नर्तकी बन जाय।
कभी उर अजीर नचावही बानी ।

विधाता-विश्वसर्जक-परमात्मा कवि के अंत:करण के आंगन में वाणी को नृत्य कराता है। मैं तो समझता हूं, मैं स्पीकर नहीं हूं, नर्तक हूं। नृत्य आदमी को हल्का-फूल्का रखता है। मैं एक सवाल पूछुं? ईश्वर ने पक्षी को पंख दिये फ़िर पैर देने की जरूरत क्या थी? पंख है इसलिए तो वो पक्षी है। मुझे लगता है, हम को शिखावन देने के लिए पैर दिए कि तुम्हारे पास कितने मजबूत और समर्थ पंख हो तो भी पैर को मत भूलना। जमीन पर गड़ाये रखना पैर। केवल पंख होगे तो उड़ान भरकर थक जायेगी और ऐसे गिरोगे कि इससे ज्यादा पतन असंभव है। इसलिए परमात्मा पैर देते हैं कि पैर को जडाये रखो जमीन पर! पक्षी हमें बोध देता है। इसलिए किसीकी पांखों को हमने तिलक नहीं किया, तेरी ये महत्ता, तेरा ये पद। हमनें जब भी किसीकी पूजा की है तो पैरों की ही की है। तेरी उड़ान की, तेरी ऊंचाई की नहीं। तो ये दो पंक्तियां 'रामचरित मानस' की-

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई ।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं ।
बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ।।

चैतन्य ने भी नृत्य किया था। तो नृत्य भी एक मारग है परमतत्त्व के द्वार पर पहुंचने का। कथा की परंपरा। 'रामचरित मानस' में सात सोपान में तुलसीदास की रचना मूल तो आदि कवि वाल्मीकि का 'रामायण'। शंकर जिसने 'मानस' की रचना की, तुलसी ने उसको संपादित किया और संवत् १६३१ में अयोध्या में प्रकाशित किया वो 'रामचरित मानस' के शंकर ये अनादि कवि है। जिसमें सात सोपान है। वाल्मीकि ने 'कांड' नाम दिया है। 'बालकांड'; 'अयोध्याकांड'; 'अरण्यकांड'; 'किष्किन्धाकांड'; 'सुन्दरकांड'; 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड' सातवां। तो, ये सप्त सोपान का शास्त्र। और पहले 'बालकांड' के आरंभ में मंगलाचरण किया तो सात ही मंत्र लिखे।

'रामचरित मानस' संगीतमय है। तो सूरों की संख्या भी सात है। सात आसमां है। सात पाताल। ज्ञान की भूमिका भी तो सप्त है। तो, बहुत से संदर्भ में हम उसको देख सकते हैं। गोस्वामीजी ने संस्कृत में मंगलाचरण किया। तुलसी का लक्ष्य था आख़िरी आदमी तक ये शास्त्र पहुंचे। सेतु बनकर श्लोक को लोक तक ले आये। लोक को श्लोक समझ पायें इतनी ऊंचाई उसने प्रदान की। ये क्रांति थी।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ।।

पहले वाणी और विनायक की वंदना की। फ़िर शिव और पार्वती की वंदना की। फ़िर वाल्मीकि और हनुमानजी की वंदना। फ़िर सीतारामजी की वंदना की। वाणी-विनायक, शिव-पार्वती, गुरु, वाल्मीकि, हनुमानजी, सीताराम, बीच में गुरु की वंदना की। गुरु केन्द्र में हैं। गुरु मध्य में होता है। हम जैसों के लिए गुरु जरूरी है। मैं ऐसा मानता हूं। गुरु को केन्द्र में रखो। तुलसीजी कहते हैं-

स्वान्त:सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा ।

मैंने ये रघुनाथ गाथा स्वान्त: सुख के लिए रचना की। तुलसी के 'रामचरित मानस' में एक सूत्र है-

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।
परस कि होइ बिहीन समीरा ।।

बहुत अभ्यास मांग लेता है ये सूत्र। तुलसीजी कहते हैं कि मन को स्थिर करना है तो जब तक आदमी को स्वान्तः सुख नहीं मिलता, मन कभी स्थिर नहीं होता। परसुख जब तक मिलता रहे, मन और चंचल, मन और चंचल! एक सुख मिला, दूसरे सुख की कामना मन को चंचल बनाती है। जिस साधक को अपना निज सुख मिले, जिसको तुलसी स्वान्तः सुख कहते हैं। तुलसी कहते हैं, जब तक हवा है, तब तक हम एक-दूसरें को स्पर्श करते हैं। स्पेस में आदमी चला गया तो हवा नहीं है। वहां कोई किसीको स्पर्श नहीं कर सकता। बिना हवा स्पर्श असंभव है, वैसे निज सुख के बिना स्थैर्य असंभव है।

मनु थिर करि तब संभु सुजाना ।

फ़िर लोकबोली में तुलसीजी उतरते हैं। पांच सोरठें लिखते हैं। पंच देवों के प्रति हमारी वंदना होनी चाहिए ये शंकराचार्य की बात को तुलसी कुबूल करते हैं। गणेश की वंदना, फ़िर सूर्य का स्मरण, भगवान नारायण विष्णु का स्मरण, माँ दुर्गा का स्मरण और भगवन् आशुतोष का स्मरण। ये पंचदेव की पूजा। उसका आध्यात्मिक अर्थ है। गणेशजी की पूजा का मतलब गणेश विवेक का देवता है। आदमी का विवेक बरकरार रहे। फ़िर सूर्य-वंदना, उजाले की ओर यात्रा करने का संकल्प। भगवान विष्णु का अर्थ है व्यापकता। साधक उदार होना चाहिए। गौरीपूजा मानी अपनी गुणातीत श्रद्धा। और शंकर की पूजा। शिव का अर्थ है कल्याण। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' दूसरों का अच्छा हो। और फ़िर गुरुवंदना की जिसको मेरी व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता कहती है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।
समन सकल भव रुज परिवारू ।।

गुरु वंदना है। गुरुपद की वंदना है। महिमावंत है। गुरुपद की रज लेकर अंजन बनाकर मैं रामकथा गाने जा रहा हूं। आंख पवित्र हो गई तो तुलसीजी सब को वंदन करने लगे। तुलसी ने पूरे जगत की वंदना की। पूरा जगत ब्रह्ममय है।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

पूरा जगत सीताराममय है। पूरे जगत को प्रणाम। फ़िर राजपरिवार की वंदना, महाराज दशरथजी, कौशल्या, जनक आदि-आदि सब की; भरत, शत्रुघ्न, सीता-राम सब की। बीच में एक वंदना करते हैं श्री हनुमानजी महाराज की-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

श्री हनुमानजी की वंदना की। हनुमंत ये प्राणतत्त्व है। एक ऊर्जातत्त्व है। हनुमंततत्त्व की वंदना करके आज की कथा को विराम।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

परमतत्त्व राम अवतार ने रिहर्सल किया था। कृष्ण ने मंच पर प्रोग्राम पेश कर दिया। राम नर्तक है। मेरे पास प्रमाण है। आदमी की अंतःचेतना ही उनका प्रमाण होता है। ये हवा चलती है तो नृत्य करती है। सरिता बहती है तो नृत्य करती है। किरणें आती है तो अपनी अदा से नृत्य करती धरती पे आती है। चांदनी विस्तरती है तो नृत्य करके आती है। एक अभागा मानवी है कि नृत्य भूल गया! परंपराओं की जंज़ीर ने उनके पैरों को बांध दिया!

नृत्य कला भी है, विद्या भी है और अध्यात्म भी है

'मानस-नृत्य' नव दिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु है। उसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हम सब मिलकर कर्णविज्ञान और जिह्वाविज्ञान का आश्रय लेकर संवाद के रूप में किये जा रहे हैं।

एक जिज्ञासा है कि बापू, वारकरी संतों ने नृत्य किया है; जो कल मैंने स्मरण भी किया है। और पंढ़रीनाथ को भी नचाया है। स्वयं ठाकुर को भी नचाया है। एक श्रोता प्रमाण दे रहे हैं कि संत नामदेव कीर्तन करते थे। पांडुरंग नाचते थे। प्रमाण-

नामदेव कीर्तन करी पुंढ़े देव नाचे ।
पांडुरंग जनीमणे ज्ञानदेवा बोला अभंग ।

संत एकनाथजी कहते हैं कि कीर्तन में नाचता है वो धन्य है। मैंने बहुत पहले कुछ थोड़ा-सा पढ़ा, विद्या के बारे में और कलाओं के बारे में। दो स्वतंत्र ग्रंथ है। एक में विद्याओं का वर्गीकरण है। उसमें कहीं चौदह विद्या का वर्णन है। कहीं सोलह विद्या का वर्णन है। कहीं अठारह से भी अधिक। विद्या जब तंत्र की ओर गति करती है तब उसमें सब साधक के बिलग-बिलग अनुभव के अनुसार अंक लग जाते हैं। यहां मैं आप के सामने सर्वसामान्य बात शेर कर रहा हूं चौदह विद्या; और कलायें होती है चौसठ। कला के शास्त्र में मूलतः कलाओं का अंक जो है वो चौसठ है। परंतु मैंने गुरुकृपा से जो समझा है वो ये है कि कला हो या विद्या हो, दोनों में नृत्य है। नृत्य कला भी है, नृत्य विद्या भी है।

कथा का केन्द्रीय विचार जो है ये है, कला अध्यात्म भी है। नृत्य अध्यात्म भी है। लेकिन ये मेरी जिम्मेवारी से मैं ये नृत्य को अध्यात्म के साथ जोड़ता हूं और मेरा ईरादा आध्यात्मिक नृत्य से है। इसका मतलब कोई ये ना करे कि नृत्य जब कला है तब निम्न हो जाता है। नृत्य विद्या है तब उसका पद कुछ दूसरे स्थान पर है और नृत्य अध्यात्म हो तो सर्वोपरि ऐसी कोई बात नहीं। जैसी हमारी सोच, जैसी हमारी क्षमता। एक छोटी-सी पंक्ति है शायरी में-

ऐसी बात कब समझ में आयेगी प्यारों,
मैं महसूस करता हूं, लगता है वो महसूस करते हैं।

ये है गुरु और शिष्य का रिस्ता जिसमें शिष्य, आश्रित जब गुरु को महसूस करता है तब प्रमाण है गुरु भी शिष्य को महसूस कर रहा हो। ये संलग्नता जब होती है तब नृत्य अध्यात्म बन जाता है। कला नहीं रहती, विद्या नहीं रहती।

आज कहते हैं पूर्णिमा है, लेकिन पंचांग के मुताबिक व्रत की पूर्णिमा कल है। कल बुद्ध पूर्णिमा है। इसलिए तथागत बुद्ध का स्मरण हो रहा है। तथागत के वचनों को उद्धृत करना चाहता हूं। अपने दस हजार भिखुओं को बुद्ध ने पांच-छ बातें कही कि मेरी बातें आप को आप की परंपरा के अनुकूल लगती है इसलिए मत मानना। और बुद्ध कह

रहे हैं, मेरी बात मेरी परंपरा के अनुकूल है इसलिए मत मानना। मुझे लोग बुद्ध कह रहे हैं, भगवान कहते हैं, तथागत कहते हैं। एक बहुत बड़ा पद मुझे मिल रहा है और इतना बड़ा पद प्राप्त हुआ है ऐसी बात सोचकर भी मेरी बात मत मानना। मेरी बात से आप को सुकुन मिल रहा है, आप को सुख मिल रहा है, इसलिए भी मेरी बात मत मानना। पांचवीं वस्तु, मेरी बात आप के गुरु ने भी किसी ढ़ंग से आप को सुनाई हो और आप के गुरु के वचन के अनुकूल पड़ती हो तो भी मत मानना। मैं पूर्वाश्रम में एक राजकुमार, एक बड़े कुल का बेटा, इसलिए ये युवराज के गौरव के नाते भी मेरी बात मत मानना। और मेरे रूप को देखकर मेरी वाणी के प्रभाव में आकर भी मेरी बात मत मानना। मेरी बात केवल, केवल, केवल, आप की विवेकबुद्धि से मानना।

मुझे भी बार-बार यही दोहराना है कि व्यासपीठ की बात आप की परंपरा के अनुकूल पड़ रही है इसलिए मत मानना। मोरारिबापू बोल रहे हैं इसलिए 'बापू बोले सो निहाल', ऐसा सोचकर मत मानना। व्यासपीठ के प्रति आप को श्रद्धा है इसलिए भी मत मानना। व्यासपीठ से कही जा रही, बोली जा रही बोली आप को प्रभावित करती हो इसलिए भी प्लीज़, मत मानना। व्यासपीठ के बोल आप को सुकुन देते हो तो भी मत मानना। व्यासपीठ की बातें आप की विवेकबुद्धि से ही मानना। और फ़िर बुद्ध ने कहा कि मेरा कुल बराबर नहीं है इसलिए आप की बात मैं न मानूं ऐसे नहीं करना। मैं पंडित नहीं हूं, मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं, मैं ज्ञानी नहीं हूं, इसलिए भी मेरी बात को छोड़ मत देना। मेरी बात में कोई प्रभावक शब्दावलि नहीं है इसलिए भी मेरी बात को निकम्मी समझकर छोड़ना मत। मेरी बात समझ में नहीं आ रही है इसलिए भी मेरी बात छोड़ देना मत। मेरी बातें केवल बकवास लगती है ऐसा महसूस हो तो भी मेरी बात को छोड़ना मत और फ़िर वोही निष्कर्ष पर आते हैं, मेरी बात केवल छोड़ना भी चाहो तो विवेकबुद्धि से छोड़ना।

मेरे श्रोता भाई-बहन, मैं आप से प्रार्थना करता हूं हाथ फैलाये कि कथा में इतनी रुचि और रस है तो मेहरबानीकर व्यासपीठ की बातें केवल गौरव के कारण मत मानना और व्यासपीठ की बातें तुम्हें अनुकूल नहीं है इसलिए छोड़ भी मत देना। कसो विवेकबुद्धि से। तभी घटना घटेगी। और जिसको विवेकबुद्धि प्राप्त हो जाती है, 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।' 'भगवद्गीता' कहती है, उसको जागरण में देर नहीं लगती।

तो, नृत्य कला है। नृत्य विद्या है। और मोरारिबापू कहता है, नृत्य अध्यात्म है। और मोरारिबापू कहे इसलिए मत मानना और मोरारिबापू कहां काशी पढ़ने गया था? इसलिए मत छोड़ देना। आप के आंतर् सोच-विवेकबुद्धि से मानना। और विवेक कहां से आयेगा? रामकथा से।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

कभी अकेले पड़ो, तो चौपाईयां ऐसे गाओ। विवेकबुद्धि पानी है तो खुद से सत्संग किया जाय।

और मुझे स्मरण आता है। दादा अच्छा गाते थे लेकिन कभी गाते नहीं थे। एक दिन मेरा विनय सुनकर मैंने कहा, मैं तो चौपाईयां जो हमारा साधु-समाज गाता है उसमें भी गाउंगा। थोड़ा बहुत बिना सीखे राग-बाग दिमाग में घुस गये है उसमें भी गाउंगा। एक बार मैंने प्रार्थना की थी कि किस राग में गाउं तो आप को अच्छा लगे। दादा के मन में हमारी वैश्नव परंपरा की विदाय का ही पद था। जब वैश्नव साधु समाधि की ओर जाता है तब यही पद गाया जाता है -

मारी छेल्ली वेळाना राम राम,
वाला रे संतने जय जय सीताराम ...

तब यह चौपाई, जो आज मैं विवेकबुद्धि के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं, दादा ने दो मिनट गाया था।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।

मुझे कहने दो, तलगाजरडा का देशी नलिये का ये घर पूरा ध्यानस्थ 'इति संस्मृत्य संस्मृत्य।' स्मरण की बहुत बड़ी महिमा है। विवेकबुद्धि से परखना और विवेक मिलेगा सत्संग से। कोई विवेक नहीं बेचता है क्योंकि विवेक बेचा जाता नहीं है। विवेक बिकता नहीं, विवेक बुद्धपुरुषों के पास बैठकर पाया जाता है।

हमारी भाषा में हम हर शब्द के पीछे 'ब' क्यों लगाते हैं? जैसे रोटला-बोटला, काम-बाम छे? अकेले काम भी बोल सकते हैं। किसीको पूछे कि घडियाल है तो काफ़ी है लेकिन हम बोलते हैं घडियाल-बडियाल है? ये बडियाल क्या है? पार्टी-बार्टी करते हो? गाना-बाना गाते हो? हर जगह 'ब'! मुझे लगता है कि 'ब' लगने से शब्द मजबूत हो जाता है। मुझे लगता है ये बावा का 'बी' है! जिसके पीछे बावा पड़ा है साहब, जिसके पीछे कोई बुद्धपुरुष पड़ा है। कोई परम तत्त्व का धक्का है जिसके पीछे। ऐसे बुद्धपुरुष के पास एक बार जाने के बाद वो हमारा पीछा करता है। ऐसे सद्गुरु के शरण में जाना ताकि विवेक प्राप्त हो। जो कभी हमें विमुख होने न दे। एक बार भूल से भी गये फ़िर वो विमुख न होने दे वो बुद्धपुरुष है। बावा मीन्स कोई ज्ञातिवाद नहीं; जिन्होंने परमहंसी प्राप्त की। जिन्होंने बोध प्राप्त किया। तो, जिसके पीछे 'ब' हो इसके संग से विवेक की प्राप्ति होती है। विवेक मिलता है बुद्धों के संग में। इसलिए गोस्वाजी ने गाया कि 'बिनु सतसंग बिबेक न होई।' तो, बाप! मिलेगा विवेक सत्संग से। जिन्होंने विवेक प्राप्त किया है वो साधु-संग से। मूल बात ये कि किसी भी बातें विवेक से ही स्वीकार करना। और किसीकी भी बातें यदि छोड़नी है तो भी विवेकबुद्धि से ही त्यागना। द्वेष से मत त्यागना और केवल हर्ष और अहोभाव से मत कुबूल कर लेना। ये बुद्ध कहते थे।

नृत्य कला भी है, विद्या भी है और अध्यात्म भी है। और ये अध्यात्म व्यासपीठ जोड़ रही है उसको केवल अहोभाव से मत कुबूल कर लेना और क्या रखा है, ऐसे भाव से त्याग भी मत देना। तो बाप! चौसठ कला है। उसमें भी नृत्य की बात आती है। और चौदह, सोलह या अठारह विद्या मानी जाती है। कोई भी कला, कलाकार को भी बांध देती है और कला देखनेवालों को-सुननेवालों को भी बांध देती है। जब तक आर्टिस्ट आर्टिस्ट है तब तक बंधा है और उसकी कला इतनी प्रभावक होगी कि ओडियन्स भी बंध जायेगा अवश्य। वो बांध देगा लेकिन वो स्वयं भी स्वतंत्र नहीं है। वो भी बंधा हुआ है। जब तक नृत्य कला होगी तब तक नृत्य खुद को भी बांध देगा और दर्शको को भी बांध देगा। अपनी कला से अभिभूत होकर स्वयं नर्तक भी बंध जाता है। नृत्य कला मिटकर जब विद्या बन जाती है तब खुद भी मुक्त होता है और दर्शक को भी मुक्त कर देता है। बहुत सूक्ष्म अंतर है।

कभी-कभी कला जिंदगीभर कला-उपासक को बांध रखती है और विद्या में वो प्रवेश नहीं कर पाती। और कला जब विद्या में प्रविष्ट हो जाती है तत्क्षण वो मुक्त हो जाता है। वो डान्स नहीं छोड़ेगा, लेकिन डान्स जब तक नृत्य था और कला बांध रही थी उस बंधन से वो नृत्य मुक्त हो गया और ये आदमी और जोर से नृत्य कर सकता है। और स्वतंत्रता से नाच सकता है। फ़िर उसको किसीकी लोकमर्यादा नहीं बांध सकेगी। और उसका पूरा प्रमाण है मीरां। मीरां ने भी घुंघरू बांधे थे। कलाकार जब घुंघरूं बांधता है तब ये बेडी है और विद्यावान घुंघरूं बांधता है तब ये मुक्त है। मीरां को सांस का डर बांध नहीं पाया। राजा का ज़हर बांध नहीं पाया। मीरां को लोकलज्ञा नहीं बांध पाई। मीरां ने साधु का संग किया था इसलिए उसकी कला विद्यारूप हो गई थी और मीरां विद्यारूप होने के कारण मेरी दृष्टि में मीरां का नृत्य अध्यात्म-नृत्य है। चैतन्य महाप्रभु का नृत्य अध्यात्म-नृत्य है। तुकारामजी का नृत्य अध्यात्म-नृत्य है। नामदेव का नृत्य अध्यात्म-नृत्य है और पंढ़रीनाथ नाचा हो तो वो भी अध्यात्म-नृत्य है। और हनुमानजी के दर्शन होने के बाद समर्थ रामदास जो थोड़ा 'थै-थै' कर दिया हो तो वो नृत्य अध्यात्म-नृत्य था।

लोक कहे मीरां भई बांवरी,
सांस कहे कुलनाशी रे;

मैं तो मेरे नारायण की आप ही होवे दासी रे.
पग घुंघरूं बांध मीरां नाची रे...

तो, बाप! कला जब विद्या बन जाती है तो नृत्य स्वतंत्र होता है। दर्शक भी स्वतंत्र हो जाता है लेकिन नृत्य जब अध्यात्म बन जाता है तब 'न मुक्तिर्नबन्ध, चिदानंदरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।' बुद्ध नहीं नाचे। ओशो का भी वक्तव्य है कि बुद्ध कभी नाचे नहीं। और महावीर तो बिलकुल नहीं नाचे। कृष्ण भरपूर नाचे। राम और राम की माया पूरे जगत को नचा रही है। और स्वयं 'नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी।' राम स्वयं नर्तन कराते हैं। कृष्ण का मंच था कालि नाग की फना। काल पर कदम रख सकते हैं उनके नृत्य की महिमा कौन कहे?

तो, मेरे भाई-बहन, नृत्य को जब मैं आध्यात्मिक क्षेत्र में ले जाता हूं फ़िर उसको आप प्रेमजगत का नृत्य कहो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उसको आप भक्तिजगत का नृत्य कहो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि प्रेम आध्यात्मिक है। स्प्रेड लव; और लव ईझ लाईफ़। कथा प्रेम का संदेश है, सत्य का संदेश है। करुणा का वरदान है भगवत्‌कथा। स्प्रेड लव, स्प्रेड लव। वैश्विक सूत्रपात। बिकोझ लव इझ लाईफ़। प्रेम जीवन है। जिसस कहते थे, परमात्मा प्रेम है और अनुभव हुआ तो बदल दिया, प्रेम ही परमात्मा है। महात्मा गांधी बापू कहते थे कि परमात्मा सत्य है। अनुभव पूरा हुआ तो कहने लगे सत्य ही परमात्मा है। बुद्ध कहते थे परमात्मा कारुणिक है लेकिन आख़िर में बदल जाता है, करुणा ही परमात्मा है।

तो, आध्यात्मिक नृत्य न बांधता है, न मुक्त करता है। दोनों इस द्वन्द्व से मुक्त हो जाता है। तुकाराम नाचते हैं और पंढरीनाथ को नचाते हैं। 'रामचरित मानस' में लिखा है कि ज्ञान-बिराग ये पुरुष है और भक्ति स्त्री है। तुलना में स्त्री जितना अद्‌भुत नृत्य कर सकती है उतना पुरुष नहीं कर सकते। मातृशरीर में जो नृत्य हो सकता है वो पुरुष शरीर में इतना नहीं हो सकता। अपवाद होते हैं। केवल ज्ञान जो है वो मातृभक्तिरूपी नारी के अभाव में नाच नहीं पाता। नृत्य के लिए चाहिए थोड़ा नारीपना। विनोबाजी ने 'स्त्री' शब्द की वेद की पंक्ति लेकर व्याख्या करते हुए कहा कि 'स्त्री' शब्द स्त्री धातु से आया है और उसका अर्थ है विस्तरण। स्प्रेड लव। इसलिए मातृशरीर जितना विस्तार कर सकता है इतना पुरुष शरीर नहीं कर सकता।

तो, जगद्‌गुरु शंकराचार्य ज्ञानी है। जब तक ज्ञानी रहे होंगे, नाच नहीं पाये होंगे। लेकिन जब 'भज गोविंदम्' गाया होगा, जब भक्ति का रंग लगा होगा तब गंगा की लहरें को देखकर उसने भी ठुमका लगाया होगा! क्योंकि ज्ञानी तभी नाचेगा जब भक्ति का संस्पर्श हो जाय। शरणागति भक्ति का संकल्प है। भगवान शंकर के समान दुनिया में कौन ज्ञानी है? शिव तो परमतत्त्व है। फ़िर भी वो नाचता है। निनु मज़मुदार कहते हैं-

सत सृष्टि तांडव रचयिता
नटराज राज नमो नम: ।

शंकर भगवान केवल ज्ञानी होते तो नहीं नाच पाते लेकिन-

तुज शक्ति वामांगे स्थिता ।

पार्वती तेरे वाम अंग में है। तू अर्धनारेश्वर है इसलिए तू नाच सकता है।

ह्रीं चंडिका अपराजिता
सहु वेद गाये संहिता
नटराज राज नमो नम: ।

भगवान कृष्ण केवल पुरुष होते तो शायद नृत्य नहीं कर पाये होते। लेकिन समन्विता है कृष्ण इसलिए वो रास कर पाया। उसके लिए द्वन्द्व समाप्त हो जाता है जिसको आदि जगद्‌गुरु कहते हैं, 'चिदानंद रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'

'मानस-नृत्य' में जो पंक्तियां ली है उसमें पहली पंक्ति है सुतीक्ष्ण के नृत्य की। अगस्त्य ऋषि का शिष्य सुतीक्ष्ण। 'अरण्यकांड' का प्रसंग। जब कान से सुनता है कि भगवान राम आ रहे हैं तो सुतीक्ष्ण इतने भाव में डूब गये कि क्या करूं क्या न करूं! कुछ समझ में नहीं आया! कभी पीछे दौडते हैं, कभी आगे चले जाते हैं! 'रामचरित मानस' में पांच बार 'नृत्य' शब्द का प्रयोग है। नाचे, नाचा, नचावहे, ये तो बहुत बार आया है। इसमें सुतीक्ष्ण नृत्य करते हैं वहां 'नृत्य' है। आगे-

बाजहिं ताल पखाउज बीना ।
नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।।

तुलसी का नृत्य-गान इन पंक्तिओं से पकड़ा जाता है। ये आदमी मूल वाद्यों का उपयोग कर रहा है। पखावज और बीना हमारे मूल वाद्यों में से है। अप्सराएं नृत्य करती हैं। ताल एक विज्ञान है ये आज पकड़ पाया। ताली को आज योग बनाया गया है। ताली बजाने से कितने प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं! तुलसी को ये पता है वर्ना मेरा तुलसी ताली बजाने की बात 'रामचरित मानस' की तुलना में ना लाते। उसको इस विज्ञान का अनुभव है। तुलसी कहते हैं-

रामकथा सुंदर कर तारी ।
संसय बिहग उड़ावनिहारी ।।

भगवान शिवजी पार्वती से कहते हैं देवी, रामकथा और कुछ नहीं है, दो हाथ की ताली है। और ताली लगाने से पक्षी उड़ जाता है। पक्षी को पथ्थर मारने की जरूरत नहीं। जहां हो बैठे-बैठे ताली लगा दो और पक्षी उड़ जाता है वैसे रामकथा सुंदर ताली है जिससे आदमी के वहम-संशयरूपी पक्षी अपनी-अपनी जगह से उड़कर भाग जाते हैं। ये ताली का विज्ञान है। ताली की अपनी महिमा है। तो केवल ताली लगाने से ये घटना घटती है। तो 'विठ्ठल, विठ्ठल' कहकर जिन लोगों ने ताली लगाई। जिन लोगों ने 'मॉं, मॉं' कहकर ताली लगाई। जिन लोगों ने 'राधे' कहकर ताली लगाई। किसी भी औषधि होती उनके साथ डोक्टर अनुपान देते हैं कि ये गोली दूध के साथ लो, ये भस्म तुलसी के पत्ते के साथ लो। मध के साथ लो। कोई न कोई अनुपान दिया जाता है। 'मानस' में अनुपान को भक्ति कहा है। जगत में मानसिक रोगों का शमन करने के लिए भक्ति के साथ ताली का सुयोग है। कौन आदमी कैसी ताली लगाता है उसका एक विज्ञान भी है और हमें पता नहीं अथवा तो हम उस पर ध्यान नहीं देते हैं! ताली लगाने से आदमी की परख होती है कि किस किसम का आदमी है। जैसे आंखों से पता लगता है वैसे ताली से पता लग जाता है। ताली भक्ति संप्रदाय का वाद्य है।

तो, 'रामचरित मानस' में पांच नृत्य की विभावना है। सुतीक्ष्ण राम आ रहे हैं ये बात सुनकर कभी आगे निकल जाता है, कभी पीछे निकल जाता है। कभी स्वयं नृत्य करने लगता है। मैं कहूंगा, सुतीक्ष्ण का नृत्य कला नहीं है, विद्या नहीं है। सुतीक्ष्ण का नृत्य भक्ति-नृत्य है, प्रेम-नृत्य है अथवा तो आध्यात्मिक नृत्य है, जो न बांधता है, न मुक्त करता है। द्वन्द्व से मुक्त है। 'मानस' के

पक्षी जो नृत्य करते हैं, कूजन करते हैं वो नृत्य सात्त्विक नृत्य है, सहज नृत्य है। वहां फ़रमाईश नहीं होती।

बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराई ।

मयूर नाचे, फ़रमाईश पर नहीं नाचते वो।

नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।

नृत्य कला में कुशल ऐसी अप्सराएं देववधूयां जिसको कहते हैं, वो नृत्य रजोगुणी नृत्य है। स्वर्ग की अप्सरा। और नृत्य में रजोगुण हो तो उसकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। ये होना भी चाहिए। नृत्य की अदायें, मुद्रायें, आंख, बोल के बिलग-बिलग भाव थोड़े रजोगुणी भी होते हैं। 'रामचरित मानस'में एक भेद नृत्य है चौथा। और पांचवां है अभेद नृत्य।

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

रामराज्य की स्थापना हो गई। राजकीय पद्धति में तो साम, दाम, दंड, भेद होते हैं। एक रामराज्य ऐसा आया उसमें दंड का विधान नहीं आया। क्योंकि कोई मुज़रीम नहीं, कोई गुनेगार नहीं, तो दंड का विधान नहीं था। न्याय के संदर्भ में दंड नहीं, केवल संन्यासी लोग हाथ में दंड लेकर घूमते थे उसके परिचय में 'दंड' शब्द दिया है। सजा के विधान में दंड नहीं था। और वहां तुलसी लिखते हैं, रामराज्य में किसीको किसीके सामने भेद नहीं था। खुले दिल, बे-परदा लोग थे। लेकिन भेद वहां रहता, परदा वहां रहता था कि जहां नर्तक समाज नृत्य करते थे। भेद रामराज्य से उड़ गया। अमीर-गरीब, ऊंच-नीच। नृत्य प्रस्तुति में भेद होना ही चाहिए तो उस नृत्य का नाम मेरी व्यासपीठ भेद नृत्य कहते हैं।

दूसरे संदर्भ में हम सोचे तो कई नृत्य भेदी होते हैं। ऐसा एक बार नृत्य शंकर ने किया था जो भेदी नृत्य था, भस्मासुर को खतम करने के लिए। वो नृत्य नहीं था। था तो भेदी था। स्वयं नाच रहा था। भस्मासुर को था कि खुद का हाथ जब खुद पर पड़ेगा तब वो भस्म होकर खतम हो जायेगा। और जिसको पता होता है कि मेरा हाथ मेरे सिर पर जायेगा तो मैं जल जाउंगा वो आदमी कभी अपना हाथ सिर पर रखेगा ही नहीं। भस्मासुर को लगा, शंकर के सिर पर हाथ रख दूं तो शंकर भस्म हो जाय! कुछ- कुछ कथा प्रतीकात्मक होती है और बहुत जरूरी होती है। शंकर ने कहा, मेरा एक शोख है, मुझे नृत्य बहुत पसंद है। तू नृत्य कर तो हम तेरी शरण। जो आदमी लोलूप हो जाता है वो भयभीत भी होता है और कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। सुंदरता पाने के लिए जैसे कहे ऐसे नाचने लगा। स्टेप, मुद्रा लेते-लेते भस्मासुर ने अपने माथे हाथ रखा और भस्म हो गया! उस नृत्य को कहते हैं भेदी नृत्य। और एक नृत्य है अभेद नृत्य। परमात्मा एक ऐसा नट है, कभी ये बनता है, कभी ये बनता है। आख़िर में ये भी नहीं होता, वो भी नहीं होता।

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोई।

सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।

वहां परमात्मा का अभेदी नृत्य का दृष्टांत गोस्वामीजी ने प्रस्तुत किया।

तो 'मानस-नृत्य'; 'मानस'का एक अर्थ होता है मन भी और शिवजी ने 'मानस'का जो अर्थ किया है वो हृदय। 'मानस-नृत्य' जब हम विषय रख रहे हैं तो इसका मतलब हो गया हृदय का नृत्य। जाहिर नृत्य नहीं, आंतरिक नृत्य। स्वयं आत्मा नर्तन करे। ऋषिओं के काल में नृत्य एक थेरापी थी। कोई श्लोक, संकीर्तन के साथ आश्रम में नृत्य होता था। केवल आध्यात्मिक नृत्य। 'मानस-नृत्य' का सीधा-सादा अर्थ है दिल का नृत्य, हृदय का नृत्य। शरीर का नृत्य, मन का नृत्य और तीसरा आत्मा का नृत्य। हमारी गति शरीर के नृत्य से मन के नृत्य में हो और मन के नृत्य आगे बढ़ते-बढ़ते अध्यात्म नृत्य में हो।

ओशो ने कभी कहा था कि मीरां ने नाचकर पाया। गुरु नानक ने गाकर पाया। चैतन्य ने भी नाचकर पाया। बुद्ध ने ध्यान करके पाया। ऐसा ओशो का निवेदन है। और नृत्य जब समाप्त हो जाता था तब दीवेल होते हुए दीपशिखायें मंद हो जाती थी। 'पाकीज़ा' के गीत में जो बात आई, उसको इसका अनुभव हो, बात तो वो ही है। 'ये चराग बुझ रहे हैं, मेरे साथ चलते-चलते'; सीधा अध्यात्म है। गुरु राह में मिल जाता है। गुरु का दायित्व मंज़िल नहीं है, मारग के बीच में मिलना है। मंज़िल तो परमात्मा है।

तो, अध्यात्म-नृत्य के ये रहस्य हैं जो इक्कीसवीं सदी में खुलते जा रहे हैं। क्योंकि पार्वती ने तो उस काल में पूछा था, हे महादेव, 'मानस' के अनेक रहस्य है वो मैं न पूछ पाई हूं तो खोल देना। लेकिन महादेव ने उस समय नहीं खोला। आज कितने महापुरुष रहस्य खोलते जा रहे हैं!

हमारे यहां गुरुपरंपरा में गुरु की जो रुचि होती है वो पूरी होती है तो शिष्य नाचता है। सूफ़ी संत बुल्लेसा, बुलिया; एक ऐसी कुछ घटना घटी कि उसको पता था कि मेरे गुरु को नृत्य पसंद है; इसलिए बुलिया नृत्य सीखा। नृत्य की साधना की और अपने गुरु के सामने किया। नृत्य भी ईश्वरप्राप्ति का एक मारग है, जो सुतीक्ष्ण ने उसी मारग से हरि प्राप्त किया। भगवान उसके हृदय में प्रगट हुए।

तुलसीदासजी ने लिखा कि गुरु की चरणरज से मेरी आंख पवित्र हो गई ताकि मुझे कोई निंदनीय नहीं दिखाई दिया। सब वंदनीय दिखाई दिये। रुचि बढ़ाओ भगवत्कथा में। हम समाज में ऐसे जायें कि हमारी जो निंदा करने की आदत है वो निदान में परिवर्तित हो जाय। डोक्टर निदान करके उसका उपाय करते हैं। हमारे यहां सूत्र आया है, गुरु ही उपाय है। समस्त रोगों का ईलाज गुरु है। तुलसी ने पूरे जगत को सीयाराम समझकर प्रणाम किया। सब की वंदना की। तुलसीजी नौ दोहें में बहतर पंक्तिओं में रामनाम महाराज की वंदना करते हैं; रामनाम की महिमा का गायन करते हैं।

बंदऊ नाम राम रघुबर को।

हेतु कृसानु भानु हिम कर को।।

कोई भी नाम लो। मैं कहता हूं, जपो तो रामनाम। कीर्तन करो तो कृष्ण के नाम का करो और ध्यान धरो तो शंकर का करो और तीनों को एक साथ मिलाकर कुछ करना है तो ठाकुर रामकृष्ण की तरह 'माँ, माँ, माँ।' जगदंबा, तू मेरी माँ है। त्रेतायुग में अवतार लीला करके जो-जो काम किये वो आज कलियुग में उनका नाम केवल करता है। आदमी हरिनाम का आश्रय करे तो नाम के प्रताप से साधक में दशों अवतार प्रगट होते हैं। हरिनाम से पाप खत्म होते हैं। सतयुग में ध्यान करके आदमी जो पाता था, त्रेता में यज्ञ करके जिस तत्त्व की प्राप्ति होती थी, द्वापर में पूजा-पाठ करने से जो मिलता था वो कलियुग में केवल नाम से उसी उपलब्धि होती है। इसलिए गुरु ने जो मंत्र दिया हो, आप को जिस नाम में रुचि हो, नाम का स्मरण करे।

नृत्य कला भी है, विद्या भी है और अध्यात्म भी है। कोई भी कला, कलाकार को भी बांध देती है और कला देखनेवालों को-सुननेवालों को भी बांध देती है। जब तक आर्टिस्ट, आर्टिस्ट है तब तक बंधा है और उसकी कला इतनी प्रभावक होगी कि ओडियन्स भी बंध जायेगा अवश्य। वो बांध देगा लेकिन वो स्वयं भी स्वतंत्र नहीं है। वो भी बंधा हुआ है। जब तक नृत्य कला होगी तब तक नृत्य खुद को भी बांध देगा और दर्शको को भी बांध देगा। अपनी कला से अभिभूत होकर स्वयं नर्तक भी बंध जाता है। नृत्य कला मिटकर जब विद्या बन जाती है तब खुद भी मुक्त होता है और दर्शक को भी मुक्त कर देता है। बहुत सूक्ष्म अंतर है।

नृत्य अध्यात्म बन जाय तो नृत्य भी परमतत्त्व को पाने का राजमार्ग है

मानस-नृत्य ॥३॥

'मानस-नृत्य', इस नवदिवसीय कथा का केन्द्रीय संवाद-सूत्र है। जिसके इर्द-गिर्द 'रामचरित मानस'के आधार पर हम और आप मिलकर संवाद कर रहे हैं। आज बुद्ध-पूर्णिमा है। पूरे संसार को बुद्ध-पूर्णिमा की बहुत-बहुत भूरीश: बधाई हो।

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

चिठ्ठी है, 'जगद्गुरु तुकाराम महाराज नाचते-नाचते सदेह वैकुंठधाम गये हैं। कई संत आख़िरी जीवन में नाचते-नाचते विठ्ठल के पैरों पर प्राणत्याग कर दिये हैं। संत ज्ञानेश्वर महाराज समाधि ले रहे थे तब पूरा वारकरी संप्रदाय भाव से नाच रहा था। संत नामदेव भजन गाते तब पांडुरंग की मूर्ति नृत्य करने लगती थी। बापू, क्या भगवान को पाने का नृत्य एक राजमार्ग है? और नृत्य और आंसू का नाता बताया जाय।'

मैं दो दिन से कह रहा हूं कि नृत्य भी जब कला मिटकर विद्या बन जाय, और विद्या मिटकर अध्यात्म बन जाय तो नृत्य भी परमतत्त्व को पाने का राजमार्ग है। संत ज्ञानेश्वर महाराज तो साक्षात् ज्ञान की मूर्ति थी। और ओशो तक जाये आप तो ओशो का निर्वाण हुआ तब भी सब जानते हैं कि सब नाचते-नाचते उसका संस्कार करते हैं। उसकी समाधि हो गई थी। सब ने नृत्य किया था। तो नृत्य राजमार्ग बन सकता है। लेकिन कुछ ज्ञानाकर्षक बातें हम जरूर चित्त में रखें। कोई नृत्य करता है और देखनेवाला दर्शक नर्तक के शरीर को ही देखता है तो वो आदमी शूद्र है। वो आदमी निम्न है।

मैं केवल 'रामचति मानस'का आश्रित हूं। लेकिन सत्य जहां से मिलता है तब मेरी सब खिड़कियां मैं खुली रखता हूं। 'आनो भद्रा क्रतव:।' वेदों ने हमें सिखाया है कि हमें दशों दिशाओं से शुभ विचारों की प्राप्ति हो। एक बहुत बड़े मोल में हम जाते हैं तो हमें खरीदना है वो ही चीज़ लेकर हम निकल जाते हैं। वहां तो कई चीजें होती है। उससे हमें क्या लेना-देना? अंधा अनुकरण करने की मुझे आदत नहीं। किसीके भी अंधे फोलोअर मत बनो। मैंने पहले दिन स्पष्ट किया था कि मैं ओशो का फोलोअर नहीं हूं। आंखवाला देख सकता है और भीतर से अंत:करण का जागा आरपार उतर जाता है। अपनी अंतर-आंख खुलनी चाहिए।

ओशो स्वयं कहते थे कि आदमी को अपनी निजता में चलना चाहिए। इसलिए मैं कुछ कहूं या तो मैं सहमत न होउं ये मेरी मौज़ है। मेरा कोई गुरु नहीं है और मैं किसीका चेला नहीं हूं। मैं शिष्य हूं एक तलगाजरडी की पघडी का। मेरे कोई शिष्य नहीं। मेरे लाखों श्रोता हैं। मजबूरसाहब का शे'र है-

ना कोई गुरु, ना कोइ चेला।
अकेले में मेला, मेले में अकेला।

और ये शंकराचार्य की परिभाषा है-

गुरोर्नैव शिष्य चिदानंद रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

गुरु-शिष्य हमारी प्रवाही परंपरा है लेकिन अंध होकर मत दौड़ना। ओशो के आश्रम में सूफ़ी नृत्य होता था। और एक समय ऐसा आया कि बहुत लोग सूफ़ी नृत्य में हिस्सा लेते थे, ओशो आश्रम में।

बुद्ध-पूर्णिमा है। श्रवस्ती में एक ब्राह्मण का बेटा जिसका नाम था वकली, बौद्ध कथाओं में जिसका ज़िक्र है। बुद्ध के बारे में उसने सुना, कभी-कभी दूर से बुद्ध का दर्शन किया और बुद्ध के देह की आभा पर इतना वो मुग्ध हो गया! पढ़ा- लिखा था। बुद्ध के बचनों से उसे कोई लेना-देना नहीं था। न ध्यान में रुचि थी। कुछ बुद्ध के दर्शन के बारे में उसको न के बराबर रुचि थी। मैं आप से प्रार्थना करूं मेरे श्रावक भाई-बहन कि आप का मन जिस पल अकारण प्रसन्न होने लगे तब समझना कि आप मानसिक तपस्या कर रहे हैं। फ़िर कथा सुनते समय, पारायण करते समय, 'विठ्ठल, विठ्ठल' गाते समय, अपने सद्गुरु की स्मृति करते समय। किसी भी प्रिय व्यक्ति को याद करने की भी छुट है। ऐसा प्रशांत मन हो। अंदर की सब हलचल बंद हो गई हो और प्रत्येक ईन्द्रिय पर निग्रह स्वाभाविक आने लगे, 'भगवद्गीता' में कृष्ण कहते हैं, ये मानसिक तप है।

बुद्ध की सहज प्रसन्नता, सौम्यत्व इनके ये परिपक्व मौन पर आकर्षित हुआ था वकली। लेकिन अंदर नहीं उतरा। शरीर बहुत प्रिय लगता था। उसने सोचा, मैं संन्यास ले लूं, दीक्षा ले लूं ताकि बुद्ध के पास रहने का अवसर मिले और जब वो प्रवचन करे तो उसमें आगे जाकर बैठूं और देख सकूं। कभी-कभी गलत कारणों से आदमी सच्चे आदमी के पास जाता है और कभी-कभी सच्चे करणों से आदमी गलत आदमी के पास पहुंच जाता है! ऐसे समय में चाहिए सत्संग प्राप्य विवेक। कारण गलत था बुद्ध के पास जाने का लेकिन गया था वो सच्चा। हम किसी महापुरुष के पास जाते हैं तब कारण कौन लेकर जाते हैं ये सोचो। पूर्व विवेक बहुत जरूरी है। और विवेक मिलेगा सत्संग से। गलत कारण लेकर वकली सच्चे महापुरुष के पास पहुंचा है। उसने दीक्षा ले ली। और कहते हैं, जो नया दीक्षित होता था उसको बुद्ध आगे बिठाते थे, पुराने को पीछे धकेल देते थे। ये बुद्ध का नियम था। और अनुकरणीय लगता है मुझे कभी- कभी। हर क्षेत्र में जो नई चेतना आई उनको आगे आने दो और पक्की चेतनाओं को चाहिए जगह दे।

मैं राजकोट जयन्तीभाई के फार्म में अकेला रात्रि को एक दिन बैठा था। तो आकाश में बहुत सितारे चमक रहे थे। इतना विमल आकाश था, तो मैंने सोचा कि सूरज निकलते ये सब चमक खत्म हो जायेगी! ये तो मेरी सोच। चमक खत्म नहीं होती, दिखती बंद हो जाती है सूरज के कारण। उसकी चमक तो वोही की वोही रहेगी। जन्मजात वो चमक है लेकिन सूरज आता है तो वो चमक सूरज के महामंडित प्रकाश में वो दिखती बंद हो जाती है। इसलिए शायद भगवान भास्कर रोज आठ-दस घंटे के बाद अस्त होने का निर्णय करता है। कभी-कभी बड़े आदमी को छोटे के प्रकाश को अक्षुण्ण रखने के लिए अस्त होना जरूरी है। आख़िरी व्यक्ति को मौका दिया जाय।

मुझे आज पूछा गया कि ओशो महाराष्ट्र की भूमि पर पुणे में बैठे थे। एक भी वारकरी संप्रदाय के संत पर वो बोले क्यों नहीं? मुझे उसका जवाब देना है। और मैं जानता हूं वो नहीं बोले। तुकाराम ज्ञानेश्वर पर बोलना चाहिये था लेकिन बोले नहीं। नरसिंह मेहता पर बोलना चाहिए था, नहीं बोले। तुलसीदास पर बोलने की जरूरत थी लेकिन नहीं बोले। उसको तो लकीर का फकीर ही कहते रहे! लेकिन उसके कुछ कारण रहे होंगे। क्यों तुलसी को छोड़ दिया होगा? सुरदास को छोड़ दिया? मीरां को लिया, नानक को लिया, कबीर को लिया, पलटु को लिया, दादु को लिया, सहजोबाई को लिया, चरणदास को लिया, एक दूसरे तुलसीदास थे उसको लिया। लेकिन बात जो है, वो उनकी मरजी, उनकी

स्वतंत्रता। हम उस पर उंगली न उठायें, लेकिन सोचे जरूर कि क्यों नहीं बोले?

पहली बात ये कि हमारी जहां श्रद्धा है उस पर वो क्यों ना बोले ,वो शिकायत क्यों करे? वो जाने! न बोले तो न बोले! महापुरुषों की अपनी महिमा होती है। हम दबाव क्यों डाले? कुछ महामंडित तत्त्वों पर बोलने के लिए भी नसीब चाहिए! अच्छे आदमी बहुत जीते भी नहीं! ज्यादा रहे होगे तो ज्ञानेश्वर पर भी बोलते। वारकरी संप्रदाय के संतों के विचार ओशो में दिखते भी है। कोई प्रबुद्ध व्यक्ति की अपनी निजता। हम क्यों डिस्टर्ब करें? अथवा तो ओशो को कहा जाता था, जिज्ञासा दी जाती थी तो बोले, समय आये बोलेंगे। किसीने जिज्ञासा भी शायद नहीं की होगी तो क्या करे? मैं ज्यादा जानता ही नहीं। मुझे तो सत्य मिल जाता है तो घुंट-घुंट पी लेता हूं।

मेरा बहुत प्यारा सूत्र है, आध्यात्मिक मार्ग के यात्री को शिकायती चित्त को खत्म करना चाहिए। हम 'रामकृष्ण हरि' गाये, हम 'विठ्ठल विठ्ठल' करे। सब अपनी मौज में करे सो करे। हमें जो संत, हमें जो विचारधारा, हमें जो सिद्धांत पसंद नहीं है तो हम उससे प्रमाणित डिस्टन्स रखें लेकिन वो गलत है, ऐसा नेटवर्क बनाकर उस पर प्रहार करने की जरूरत नहीं है।

श्री भरतजी पूरी अयोध्या को लेकर रामदर्शन के लिए चित्रकूट जाते हैं। तब भरतजी ने जो ईन्तजाम किया है 'मानस' में वो जरा चिन्तनीय है। वहां लिखा है कि रथ साथ में लिए है। घोड़ें, हाथी, पालखी भी ली है जिसमें माताएं बैठी है। चित्रकूट जाने के लिए इतनी बड़ी व्यवस्था भरतलालजी ने की थी। कुछ लोग हाथी पर बैठकर गये थे। कोई अश्वारूढ़ थे, कोई रथारूढ़ थे। माताएं आदि पालखी में थी। राम जहां बिना पदत्राण वनयात्रा करते हैं उसी रामको प्राप्त करने के लिए भरत जैसे संत ने ये व्यवस्था की। हाथी, घोड़ा ये सब क्यों? ये साधु का लक्षण है? कोई हाथी पर बैठे तो आलोचना नहीं करेगा कि राम के दर्शन करने जा रहे हो और हाथी की सवारी? अंबाड़ी पर बैठे हो? मिलना है राम को और घोड़े पर सवार हो? परमात्मा के पास जाना है और रथ में सवार हो? क्या है ये? भरत ने आलोचना नहीं की उनकी। भरत ने व्यवस्था कर दी। अयोध्या में जितने विवेकी लोग थे, बुद्धिमान लोग जितने थे इन सब को भरत ने हाथी पर बिठाया। शास्त्र गुरुमुख होना चाहिए, वर्ना शब्दार्थ मिलता है, जीवनार्थ नहीं मिलता। हाथी विवेक का प्राणी है, गजानन है। भरत ने सोचा, उसका विवेक का पंथ है, ज्ञान का मारग है तो मैं क्यों कहूं कि आप पैदल चलो। जाना राम तक है ना, जैसे भी जाओ। मेरी समझ में ये आया है कि भरत की चित्रकूट यात्रा में हाथी इसलिए है कि जो बुद्धिप्रधान बौद्धिक लोग थे उसको हाथी पर बिठाया जाय। कई योगी थे अयोध्या में जो अष्टांग योग करते थे, निग्रह करते थे, मन पर काबु करते थे ऐसी जिन सब की आदत थी इन सब को घोड़े पर बिठाया। कई धार्मिक लोग थे, धर्म-कर्म आदि-आदि में जो मानते थे उसको भरत ने रथ में बिठाया, क्योंकि रथ ये 'रामचरित मानस' के अध्यात्म अर्थ में धर्मरथ है। 'सखा धर्ममय अस रथ जाकें।' लेकिन जिसका भक्तिमारग था, आश्रय का मारग जिसका था, भरतजी ने ऐसे लोगों को, ऐसे पथिकों को पालखी में बिठाया। पालखी में क्या होता है? थके दूसरे, चले दूसरे, पहुंच जाय दूसरा! मेरे भाई-बहन, सद्गुरु की पालखी में बैठ जाओ। साधना गुरु करे, पहुंच हम जाये!

मैं इसलिए भरत को बुद्धपुरुष कहूंगा, सद्गुरु कहूंगा क्योंकि भरतजी को किसीसे अस्पृश्यता नहीं है। ये साधु का लक्षण है। वो नरसिंह को भी छुएगा, मीरां को भी छुएगा, जिसस को भी छुएगा, महंमद को भी छुएगा। ये सब जहां से शुभ लगेगा वहां से लेगा। इसलिए मैं ओशो का भी विचार ले लेता हूं। आप के सामने रखता हूं। 'मानस' एक ऐसा शास्त्र है इसमें ये सब बातें समाहित है।

शुं पूछो छो मुजने के हुं शुं करूं छुं ।
मने ज्यां गमे त्यां हरुं छुं फरुं छुं।
नथी बीक कोईनी मने आ जगतमां ।
फक्त एक मारा हरिथी डरुं छुं।

एमां मोरारिबापू सहमत नथी! आश्रित तो हरि से भी नहीं डरता। बच्चा पूर्ण माँ की गोद में होता हैं फ़िर माँ से भी नहीं डरता। माँ के कपड़े गिलें कर देता है। हरि से ड़र तब लगता है, जब मोहब्बत कच्ची है। भक्ति पूर्ण होती है वो हरि से क्यों डरे? क्योंकि हरि के स्वभाव में कोई उनसे डरे ये उसको अच्छा नहीं लगता। हरि डरानेवाला हिंसक तत्त्व नहीं है। हरि कृपालु है। हरि करुणामूर्ति है। अपना सेव्य भी शांत हो, डरानेवाला न हो।

मेरा प्रश्न है कि तुलसीदासजी ने 'मानस'में ऐसा प्रश्न क्यों उठाया कि भरत यदि न होते तो बहुत खराब हो जाता? प्रश्न तो ये उठाना होता कि राम न होते तो गरबड़ होती। ब्रह्म न प्रगट होते तो क्या होता, ऐसी दशा थी राष्ट्र की। तुलसी ने खुद वर्णन किया है। भ्रष्टाचार, दुराचार से पूरी पृथ्वी भयंकर त्रास से गुज़र रही थी। प्रश्न तो यही उठना चाहिए कि भगवान प्रगट न हुए होते तो क्या होता? लेकिन तुलसी ने प्रश्न ये उठाया कि ऐसे समय में संत प्रगट न होता तो क्या होता? साधु प्रगट होना चाहिए। ईश्वर तो 'संभवामि युगेयुगे' होता है। जगद्गुरु तुकाराम चाहिए, ज्ञानेश्वर चाहिए, कृष्णमूर्ति चाहिए, नानक चाहिए। जितने विचारों हम ओशो का ग्रहण कर सके, अच्छे हो हमारे जीवन के लिए वो करें। जो सत्य जहां से मिले। तीन सूत्र प्रदान कर दिये तुलसी ने कि भरत न प्रगट होता तो ये होता।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।

पहला घाटा इस जगत को होता यदि भरत न प्रगट होता तो सीता और राम के प्रेम से परिपूर्ण अमृत से धरती वंचित रह जाती। प्रेम के लिए भरत चाहिए। चाहिए साधु प्रेम के लिए। इस कलियुग में भोला साधु चाहिए। भरतजी भरद्वाज ऋषि के आश्रम में गये तो पहली बार विश्व को एक शीलवान साधु का दर्शन हुआ। साधु का शील क्या होता है? वो ही भरतजी चित्रकूट जाते शृंगबेरपुर गये तो शील का दर्शन हुआ भीलों के सामने। भरद्वाज के आश्रम में गये तो कीर्ति और यश का दर्शन हुआ। चित्रकूट गये तो दुनिया को भरत के प्रेम का दर्शन हुआ। कोई चमत्कार नहीं करना पड़ा। हमारी गंगासती बोली-

शीलवंत साधुने वारे वारे नमीए पानबाई ।
ए जी जेनां बदले नहीं व्रतमान रे।

कैसा साधु? जिनको भीतर कभी माया और ममता का रोग न हुआ हो। ऐसा साधु प्रातःस्मरणीय है।

मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ।

मुनि, तपस्वी, ऋषि-मुनिओं के मन को अगम, ऐसी साधना जगत को कौन दिखाता कि तपस्या क्या है? साधना क्या है? और अपनी निर्मल कीर्ति से, अपने निर्मल यश से दुनिया के दुःख, दुनिया की दरिद्रता और दुनिया के संताप को अपने यश से कौन नष्ट करता यदि भरत प्रगट न होता। संत को कीर्ति और प्रतिष्ठा मिलती है तो जगत का दुःख मिटाता है। जगत का दाह मिटाता है और जगत का संताप मिटाता है।

दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

तुलसी कहते हैं, ये भरत न होता तो मेरे जैसे सठों को राम के सन्मुख कौन ले चलता? मैं तो विमुख वापस लौट रहा था। और ध्यान रखना, परमात्मा कभी किसी से प्यार नहीं करता, प्रेम नहीं करता। संत कभी भी किसी से प्रेम नहीं करता क्योंकि प्रेम करना ये कृत्य हो जाता है और साधु कृतकृत्य होता है। साधु प्रेम नहीं करता, साधु प्रेम इतना फैला देता है कि हम कपटी को भी घेर लेता है। हम छलवालों को भी घेर लेता है। स्प्रेड लव, बीकोज़ लव इज़ लाईफ।

रात को कभी नींद न आये तो ये पंक्तियां मेरे मन में घूमती रहती है। मैं सोचता हूं कि ये अयोध्यावासी राम के संग गये तो तमसा के तट पर सब सो गये! ईश्वर के साथ चलोगे तो सो जाओगे। संत के साथ जाओगे, कभी सो नहीं पाओगे और यही प्रजा सो न पाई! प्रमाण; अयोध्या की सभा में जब भरत ने कहा कि हम सब चित्रकूट जाये राम के पास ये निर्णय जब आया कि प्रातःकाल राम के पास जाये। सुबह जाना है, सुनते ही भरत सब को प्राणप्रिय हो गये। रात कोई सो नहीं पाया! कृष्णमूर्ति का अवेरनेस; साधु के संग आदमी सावधान रहता है। निरंतर सावधानी। राम का संग सुला देता है, साधु का संग जगा देता है। निर्णय करना, रामसंग करना कि संतसंग करना। भरत साधु है। तुलसी कहे, भरत ना होते तो? और भरत एक ऐसा साधु है कि उनके संग गये वो सब नाचते थे। भरतरूपी साधु का मंथन जब ठाकोरजी ने किया तो प्रेमरूपी अमृत भी निकला और स्नेहरूपी मदिरा भी निकली।

'रामायण'में भरत का जीवन देखता हूं तो लगता है कि तीन प्रकार के मंथन-सत्य का मंथन, शिवम् का मंथन अने सुंदरम् का मंथन। एक साधु के साथ सब नृत्य कर रहे थे और वो शाश्वत नृत्य था। तो ऐसे भरत यदि ना होते, संत ना होते तो हमारा जागरण नहीं होता। 'राम-राम' करो, हरिकथा सुनो तो नींद आ जायेगी, किसी बुद्धपुरुष को याद करोगे तो आप सो नहीं पाओगे। साधुपुरुष को याद करोगे तो बार-बार आंसू आयेगा और आंसू जिसकी आंख में आये वो सो नहीं पायेगा। कृपालु राजचंद्र कहते थे, 'हे पुराणपुरुष परमात्मा, तू मुझे न मिले तो, तेरी कृपा न मिले तो कोई गीला नहीं, कोई शिकवा नहीं। लेकिन तू जिसको प्रेम करता हो ऐसे कोई बुद्धपुरुष से जीवन में एकाद बार मुलाकात करवा देना।' इसलिए हमारे संतवाणी में गाया है-

मिले कोई ऐसा संत फकीर,
पहुंचा दे भव दरिया के तीर।

साधु को कोई परहेज़ नहीं था इसलिए भरतजी ने बौद्धिकों को हाथी पर बिठाया। इन्द्रियनिग्रहवालों को घोडें की सवारी और धर्मनिष्ठ लोगों को रथ में बिठाया। और शरणागतों को पालखी भरत ने दे दी। ये साधुता है। भरत का जीवन हमें प्रेरणा देता है। शिकायती चित्त अध्यात्म का स्पीड ब्रेकर है।

अबील गुलाल उच्छल तरंगा,
नाचा ते माज़ा पांडुरंगा।

आप को ख़बर है, आप पूजा-पाठ करते हैं तो कुमकुम, अबील, गुलाल हमारी पूजाविधि में क्यों होते हैं? अबील का हमारे यहां पूजा में इसलिए उपयोग किया जाता है कि अबील आयुष्यवर्धक है। अबील आयुर्वधक माना गया है। और कुमकुम कामवर्धक है। एक अर्थ में ये कामनापूर्ति करता है। कुमकुम का चांदला तुम करो तो उसमें आध्यात्मिक सूक्ष्म ये कामनापूर्ति के लिए करता है। अच्छा है, कोई ख़राब नहीं है। लेकिन ये सौभाग्य करनेवाला और कामनापूर्ति के लिए कुमकुम माना गया है। सिंदुर इससे भी अच्छा माना गया है क्योंकि ये हनुमानजी तक पहुंचा है। ये ज्यादा निष्कामता का प्रतीक माना गया है। गुलाल सब से श्रेष्ठ है क्योंकि शास्त्र में लिखा है, गुलाल प्रीतिवर्धक है। इसलिए कृष्ण गुलाल से खेलते हैं। होली गुलाल से खेली जा रही है।

लाल गुलाल मेरी आंखों में मत डारोजी।

कबीरसाहब कहते हैं-

मरने से सब जग डरा, मेरो मन आनंद।
कब मिली हो कब भेंट हो पुरन परमानंद।

और आप को बता दूं, मृत्यु भी नृत्य करती है।

लखी नरेस बात फुरि साँची ।
तिय मिस मीचु सीस पर नाची।

दशरथ को कोई कारण मानो लगा कि मृत्यु मेरे सिर पर नर्तन कर रही हो। मृत्यु हम सब के उपर नाच रही है। डमरू बजा रही है। वहां भी नृत्यभाव तुलसीदास ने दिखाया है। आर्ट ओफ लविंग, प्रेम की कला व्यासपीठ सिखाती है। बोल तो लेते हैं बाप, शास्त्र की बातें, संतों की बातें। 'मानस'तो जीवन है। लेकिन आख़िर में तो अंततोगत्वा हरिनाम है।

बुद्ध की आदत थी, जो नये आते थे उसको आगे बिठाते थे और जो पुराने होते थे उसको पीछे बिठाते थे। तारों की चमक अक्षुण्ण रहे इसलिए समय पर सूर्य को अस्त होना चाहिए वर्ना नई चेतना प्रखर रूप से प्रकाश नहीं डाल सकती, बुझ जाती। तो बुद्ध वकली को आगे बिठाते थे। ये आदमी देह में फंसा है। बारह साल तक वकली उपर-उपर ही रहा! बुद्ध के बुद्धत्व तक वो नहीं पहुंच पाया। बस, बुद्ध की आंखों में डूब गया, क्या छबी है! बुद्ध चाहते थे कि ये और जाग जाय! एक दिन बुद्ध ने उससे कहा, अकेले टोका कि भिखु, कब तक उपर-उपर देखते रहोगे? कब तक? अब मुझे कहना पड़ता है, जाओ संघ से निकल जाओ! आक्रमक रूप लिया! और उसके बाद कहते हैं, वकली वहीं से निराश होकर निकलता है और सोच लिया, अब जीने का क्या फायदा? अहमद फ़राज़ का शे'र है-

अब ना काहु से बोलेंगे,
तन्हाई में रो लेंगे।
नींद तो कहां आयेगी फ़राज़,
मौत आई तो सो लेंगे।

बेचारा वकली निकल गया और फ़िर वो एक पहाड़ी पर चढ़ जाता है और निर्णय किया, आपघात कर लूं। मैं देखने से आगे नहीं जा सकता तो नहीं जा सकता! तुम तो बुद्ध थे, इतनी साल तूने संभाला था, बहुत करुणा की, निकाल दिया तो अब जाये तो जाये कहां? जब पहाड़ की चोटी पर से वकली आपघात करने के लिए जैसे पैर उंचा करने गया ही किसीके हाथ ने उसका कंधा पकड़ लिया, रुक! बौद्धग्रंथों में ऐसा लिखा है कि तथागत बुद्ध साक्षात् वहां प्रगट हुए थे। आदमी जब हार जाता है तब गुरु का पंजा आ ही जाता है। किसी न किसी बहाने वकली देह तक पहुंचा था, स्पर्श तो वो ही हाथ का था। रुका, पीछे मुडा ही, तथागत का हाथ था! एक प्रकाश होगा, निराकार सद्गुरु होगा, एक व्यापक विभुतत्त्व ने उसको छू लिया होगा। कुछ भी कहो। इसके पीछे नृत्य का सिद्धांत था। वकली लौट आया और उसी पल पहाड़ी से लौटते-लौटते वकली ने नृत्य किया। नृत्य अध्यात्म प्राप्ति का एक राजमार्ग बन सकता है।

ये नवलख तारें नर्तन कर रहे हैं, आंखें हो तो दिखाई देगा। शंकर की बारात में भूत-प्रेत सब नृत्य कर रहे हैं लेकिन ये तामसी नृत्य है। हमारे यहां बाउल नृत्य, सूफी नृत्य, कथ्थक नृत्य, भरत नाट्यम्, गुजराती रास-गरबा, टिप्पणी नृत्य है। लेकिन एक बड़ा प्रसिद्ध नृत्य है जो थोड़ा तामसी है, थोड़ा अहंकार मिश्रित है जिसको हम तांडव नृत्य कहते हैं। जो भगवान महादेव के सामने लंकाधिपति दशानन ने कभी किया था।

ओशो का निवेदन था कि कवि कविता लिखता है तो कविता छप गई तो कवि वहां, कविता वहां। नृत्य एक ऐसी विद्या है उसमें नर्तक और नृत्य कभी भिन्न नहीं हो सकते। इतना अद्वैत नृत्य में संभव है। नृत्य आदमी को एकाकार कर देता है। एक बहुत बड़ी उंचाई के पास आकर आदमी नाच सकता है लेकिन नृत्य के समय केवल देहदर्शन करे वो शूद्र है, वो निम्न है; वो श्रेष्ठ नहीं है।

नृत्यसाधना में स्थान बदलने पड़ते हैं फ़िर आदमी लिफ्ट हो जाय और तन के नृत्य को देखते-देखते मन के नृत्य को देखना शुरू करे, मन तक जाये। नृत्य देह से उठकर मन तक पहुंचे। मन के नृत्य के बाद आत्मा का नर्तन देखा जाय। उसके बाद फ़िर परमात्मा का दर्शन। केवल शरीर देखता है वो शूद्र है। मन देखता है वो है वैश्य। आत्मा देखता है वो क्षत्रिय है और परमात्मा देखता है वो ब्राह्मण है। और यही होना चाहिए। ये अद्भुत चर्चा है। मुझे कहो तो कहूं कि समर्पण करे वो ब्राह्मण। संकल्प करे वो क्षत्रिय। समजपूर्वक व्यवहार करे वो वैश्य और सहन करे वो सेवक। किसीकी सेवा हम करे तो सहन करना पड़ेगा। वर्ण इस तरह हमारे यहां वैचारिक अवस्था के रूप में आया।

हम और आप कीर्तन करते हैं, कौन नचाता है? नचानेवाला कोई ओर है। राम ने हमें याद कर लिया होगा तभी हम जवाब देते हैं। प्रभु ने हमें याद कर लिया है। हम तो रेंटियें की ताक है। ये नट आधीन गति है। पाठक के आधीन शुक है।

वो शख्स अपने आप को काबिल समझता है।
बड़ा अज़ीब है नुकशान को हांसिल समझता है।

द्वापरयुग में कृष्ण सारथि है। कलियुग में हमारे पास कृष्ण नहीं है इसलिए तुलसी कहते हैं, कृष्ण का भजन हमारा सारथि बन सकता है और ये सरल होगा। कृष्ण को कहां खोजे, व्रज-वनिता रो-रोकर थक गइ थी तो भी नहीं खोजा गया था। कलियुग में उसका भजन, उसका नाम हमारे जीवनरथ का सारथि है। हम किसीकी डोर पर नाच रहे हैं। हम सब का जीवनरथ किसी बुद्धपुरुष की कृपा से चल रहा है। और बुद्धपुरुष जो ताल दे उसीमें नाच लेना ही आश्रित का कर्तव्य है। जब कोई काम न बचे, केवल सोना ही बाकी है, और उसी समय निद्रा न आये तो उसी समय नींद आये तब तक हरि नाम लेना। परमात्मा पुकारता है। इसलिए हरिनाम, कलियुग का हमारे लिए यही उपाय है। मैं अजमेर की कथा में बोला था, 'गरीब नवाज़' के समय मैं बोला था कि एक साड़ी द्रौपदी के लिए पर्याप्त थी फ़िर भी नौ सौ निन्यानबें ऐसे ढ़ेर कर दिया कृष्ण ने! वो अभी भी पड़ी है हिन्दुस्तान में कि कोई बहन-बेटी की लाज कोई लूंटेगा तो कृष्ण कहे, मुझे याद करेगा तो ए पटारो पाछो खोलीश! मारा आश्रितनी लाज नहीं जाय। परमात्मा का भरोसा करता है उनको ये मदद करता है लेकिन आख़िरी घडी में मदद करता है।

मुझे आज पूछा गया कि ओशो महाराष्ट्र की भूमि पर पूणे में बैठे थे। एक भी वारकरी संप्रदाय के संत पर वो बोले क्यों नहीं? और मैं जानता हूं वो नहीं बोले। तुकाराम ज्ञानेश्वर पर बोलना चाहिये था लेकिन बोले नहीं। नरसिंह मेहता पर बोलना चाहिए था, नहीं बोले। तुलसीदास पर बोलने की जरूरत थी लेकिन नहीं बोले। उसको तो लकीर का फकीर ही कहते रहे! लेकिन उसके कुछ कारण रहे होंगे। लेकिन सोचे जरूर कि क्यों नहीं बोले? पहली बात ये कि हमारी जहां श्रद्धा है उस पर वो क्यों न बोले वो शिकायत क्यों करे? ज्यादा रहे होते तो ज्ञानेश्वर पर भी बोलते। अथवा तो किसीने जिज्ञासा भी शायद नहीं की होगी तो क्या करे? मैं ज्यादा जानता ही नहीं। मुझे तो सत्य मिल जाता है तो घुंट-घुंट पी लेता हूं।

ईश्वर को तोलना आसान है, साधु को तोलना मुश्किल है

'मानस-नृत्य', इस कथा का केन्द्रीय संवाद-सूत्र है, उसके संदर्भ में जिज्ञासायें आती रहती है। 'रामचरित मानस' में माया को बिचारी कही है। माया एक नृत्यांगना है। लेकिन गोस्वामीजी उसके बारे में शब्दप्रयोग करते हैं, वो विचारणीय है। 'मानस'कार के शब्दों में 'माया खलु नर्तकी बिचारी।' माया बिचारी है। और हमारी सनातन परंपरा में ऐसा माना गया है कि परमात्मा को यदि एक विग्रह में आप निर्णित कर लो, चतुर्भुज या जो-जो आप की मौज। तो उसके पास माया नारी के रूप में खड़ी होती है और एक भाग में भक्ति भी नारी के रूप में खड़ी होती है। ये हमारी एक परंपरा-सी है। इसके पीछे कुछ आध्यात्मिक सत्य है। हम और आप चित्र बना सकते हैं, मूर्ति भी बना सकते हैं। एक ओर भगवान है और एक ओर माया है। और 'मानस'में ऐसा सब लिखा हैं-

देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।।
देखा जीव नचावही जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ।।

गोस्वामीजी दोनों को खड़ी करते हैं। भगवान के पास मायारूपी नारी खड़ी है जो जीव को नचाती है; जो खुद भी नर्तकी है और जीव को नचाती है। और एक ओर भक्ति है। और भक्ति की बहुत-सी विधाएं है। 'श्रीमद्भागवतजी'का आश्रय लें तो-

श्रवणं कीर्तनं विष्णो:स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्म निवेदनम्।

ये नौ विधाएं वैष्णवजगत में जाहिर है। उसमें नौ प्रकार की भक्ति में दूसरे प्रकार की भक्ति है कीर्तन। इसका अर्थ ये हो गया कि माया नर्तकी है, नचाती है हमें। खुद भी नाचती है। और भक्ति कीर्तन है। नर्तकी का उल्टा, ब्रह्मलीन पूज्यपाद डोंगरे महाराज का ये अर्थघटन है। डोंगरे महाराज बापजी कहा करते थे कि नर्तकी का उल्टा कर दो तो कीर्तन। इसी आधार पर मैं कहना चाहूंगा, माया है नर्तकी और भक्ति है कीर्तन। दोनों नृत्य करती है। लेकिन एक भगवान के पास खड़ी होते हुए भी बिचारी है और दूसरी भक्ति कीर्तन जो है वो भगवान के पास खड़ी है लेकिन भगवान को बहुत प्यारी है। ये बिचारी है, ये प्यारी है। भक्ति परमात्मा को प्रिय है। भक्ति करनेवाला, जो भक्तिमान्य है वो प्रिय है। माया बिचारी है। दोनों नर्तन करती है।

कबीरसा'ब तो मायारूपी नर्तकी को कहते हैं, 'माया महा ठगनी मैं जानी।' माया ठगनी है, छलनेवाली है नर्तकी लेकिन है बिचारी। आदमी को जो बिचारी है उससे भी डरने की जरूरत नहीं और जो प्यारी है उससे भी डरने की जरूरत नहीं। जो प्यारा है ये डराये तो दंभ है और जो बिचारा है उससे क्या डरना?

मेरे दादाजी कहा करते थे कि वक्ता में पांच लक्षण है। उसने मुझे इशारे में कहा था कि कथा गाना। और वक्ता गाये, बोले, गद्य हो, पद्य हो जो भी हो। तो पांच वस्तु बताई थी कि पांच परायणता को अकबंध रखना। जो भी बोलेगा, सब के साथ ये पांच वस्तु होती है यदि हम अपनी सभी खिड़कियां खुली रखें तो। कोई पूर्वग्रह हो तो नहीं! जो उर्जा ईश्वरभजन में लगनी चाहिए, जो उर्जा शुभ में लगनी चाहिए, वो उर्जा आलोचना में न लगाई जाय। ओशो का कोई सूत्र भी मेरे समझ में ना आये तो विरोध तो मैं किसीका नहीं करता लेकिन संवादी सूर में मेरी सविनय असंमति मैं पेश करता हूं। मैंने कल ही शाम को कहा कि पहले दिन यहां कहा गया कि ओशो कहते हैं, ध्यान मूल है और प्रेम फूल है। मैं इससे सहमत नहीं हूं। सविनय मैं असहमत हूं। न ओशो नाराज हो, न ओशो की चेतना नाराज हो। नाराज हो ये साधक ही नहीं हो सकता। छोटी-छोटी बातों मे उदास हो जाय इससे क्या अपेक्षा रखे? बालक को कभी आप ने उदास देखा है? उदास होने के लिए थोड़ा बड़ा होने की जरूरत है। इसलिए बच्चा परमेश्वर है। जो उदास रहे वो दास नहीं रह सकता। इसीलए जिसस क्राईस्ट ने कहा, जो बच्चे की भांति होगा वो मेरे पिता के दरबार में प्रवेश पायेगा।

मैं ओशो पर बोलूं तो उसका फोलोअर थोड़ा हूं? मेरी यहां असहमति है। आप ने जिस चेतना को कहा उसको मेरा नमन। मैंने कई ध्यान करनेवालों को देखा है, घंटों तक ध्यान करते देखा है लेकिन प्रेम का फूल नहीं खिला! दूसरों की ईर्षा करते हैं! ध्यान नहीं करनेवालों की खुली आलोचना करते हैं, 'ये कीर्तन क्या करते हो? ध्यान करो, ध्यान करो!' मैं कहता हूं, मूल में प्रेम हो तो ध्यान का फूल खिलेगा। प्रेम करनेवाला निमग्न हो जायेगा। ध्यान करनेवाला प्रेमी हो जाय। ओशो खुद रहे ये अपनी बात है। कई संन्यासी रहे होंगे उनकी बात लेकिन बहुधा मैं नहीं देख पाता दुनिया में कि ध्यान करनेवाला भी, कथा सुननेवाला भी निंदा करते हैं! बोलनेवाला भी एक दूसरे की ईर्ष्या करते हैं! बीमारीओं का कोई ओर छोर नहीं है, साहब! मूल प्रेम है, ध्यान उसका फूल है। और धर्म उसकी ख़ुश्बु है, फ़िर जो धर्म फैलता है वो संप्रदाय नहीं होता, धर्म होता है।

आप ने कभी सोचा है कि शास्त्रों में कुछ पापजन्म अपराध माने गये, इसमें कुछ पुन्यजन्म अपराध

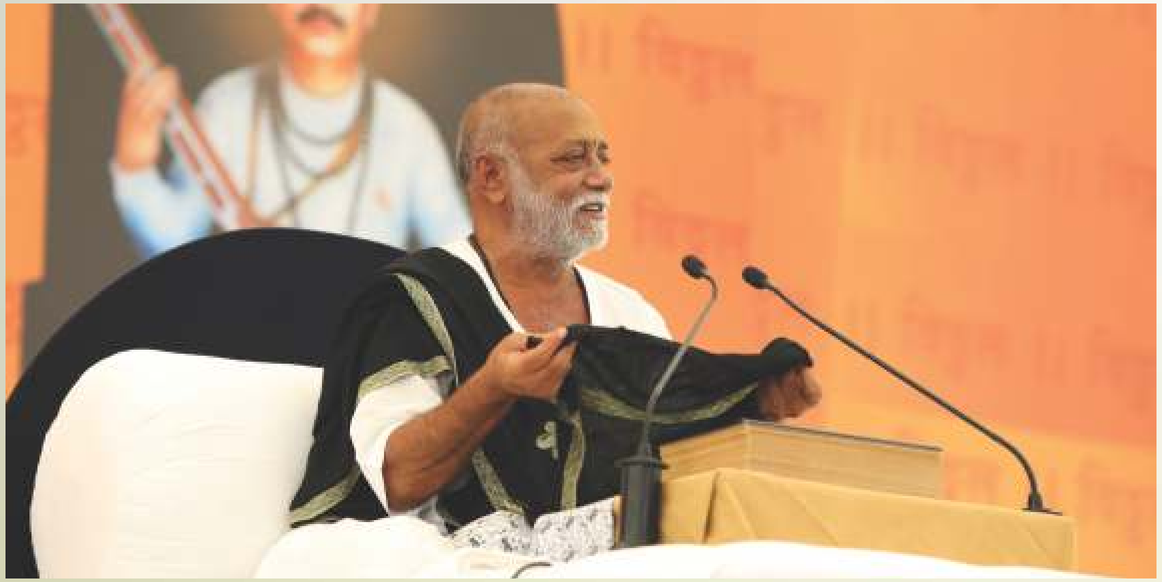

है। हमने अंधा अनुकरण किया है। निर्णय करना बहुत मुश्किल है। संप्रदाय और धर्म का यही एक मात्र श्रेष्ठतम अपराध नज़र आता है। संप्रदाय बहुधा कहेगा ये ना करो, ये ना करो। चोरी ना करो, व्यभिचार ना करो, जुआ ना खेलो। ये अच्छी बात है। ये छोड़ो, ये छोड़ो; पुन्य तो ये कहता है, धर्म तो ये कहता है कि अतिशय शुभ भी छोड़ो। ये धर्म की क्रान्ति है। किसको प्रेम कहते हो आप? मेरी समझ में प्रेम से ध्यान आता है। आप प्रेम से सुनोगे तो एक तन्हा हो जाओगे। सब अगल-बगल की बातें छुट जायेगी। यदि प्रेम है तो तन्मयता अपनेआप धीरे-धीरे आयेगी। और वो ध्यान है। और ध्यानरूपी फूल की खुश्बू धर्म है।

ईश्वर को तोलना आसान है, साधु को तोलना मुश्किल है। वो न तो सोने से तोला जाय, न हीरों से। साधु अपनी प्रज्ञा से तोला जाय। साधु अपनी अनुभूति से तोला जाय। भक्त कभी-कभी दबाव डालते हैं; अकारण अपने गुरु को भगवान बना देते हैं! बच्चों, तुम स्वयं भगवान हो। तुम भूल गये हो। शेर की संतान अपने को भेड समझ रही है! तुम खुद ब्रह्मास्मि हो, वर्ना हमारे वेद ये उद्घोषणा करते ही नहीं 'अहम् ब्रह्मास्मि।' ईस्लाम धर्म कहता है, 'अनलहक।' शंकराचार्य कहते हैं, 'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'

कल मैं पूछ रहा था कि पुणे में मैंने कितनी कथायें की? पहले दो कथा की है पुणे में। ये तीसरी कथा है। मुझे याद है पहली बार 'चिदानंदरूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्' पुणे की कथा में गाया था। 'न मृत्युर्नशंका', उसका शब्द विज्ञान तो देखो! जानकार कभी अमर की बातें ही नहीं करता। वो जानते हैं कि शरीर ही मरेगा। मौत होगी, देह की होगी अवश्य।

न मृत्युर्नशंका न मे जातिभेदः।

उसका एक अर्थ, मेरी कोई मृत्यु नहीं; मृत्यु देह की। मुझे नहीं कोई मारनेवाला।

पिता नैव मे नैव माता च जन्म न भोज्यं न भोक्ता
चिदानंदरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।।

ये कालडी का महापुरुष ही बोल सकता है! मेरा तुलसी कहता है-

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।

तो बाप, लोग चढ़ा देते हैं!

अतुलित अतिथि राम लघु भाई।

राम तोला जा सकता है, साधु तोला नहीं जा सकता। लोग उदास क्यों होते, मेरी समझ में नहीं आता! और किसी महापुरुष ने कुछ कहा हो वो अपने बुद्धपुरुष के अनुकूल ना हो तो आप भी उदास न हो। जिद्द ना करो, छोड़ो ये बात। जगद्गुरु तुकाराम हुए। वो नहीं है, उसका नाद अभी भी गुंज रहा है पूरे संसार में 'विठ्ठल, विठ्ठल, विठ्ठल।'

मुझे कहा गया था गाने का तब पांच वस्तु का ध्यान रखना कहा था। पांच सूत्र मेरे लिए अंगत है लेकिन मैं सार्वजनिक कर रहा हूं। कहा था गाना है, बोलना है तो पीठपरायण रहना। परायणता का अर्थ ये न कर ले कि हमें लगाव हो गया है। खड़े-खड़े बोलना लेकिन वक्तव्य के परायण रहना। उसकी परायणता, उसकी जिम्मेवारी रखना। दूसरा सूत्र था, पोथीपरायण रहना कि तुम रामकथा की पोथी लेकर बैठ गये। तो ओशो सदैव सोफे पर, खुरशी पर बैठकर बोले, हमारे वक्ता खड़े-खड़े बोले, व्यासपीठ नहीं थी, कोई आग्रह ना हो। दूसरा सूत्र था, पोथीपरायण रहना कि तू रामकथा की पोथी लेकर बैठेगा तो पोथीपरायण हो, केन्द्र में पोथी रहे। और वक्ता व्यासपीठ पर नहीं, कोई भी विषय का प्रवचन दे तो उसको पोथीपरायण होना। पोथीपरायण मीन्स सब्जेक्ट परायण, विषयपरायण। जो विषय सोंपा गया हो उसके उपर बोलना। तीसरी बात, प्रभुपरायण रहकर बोलना; कोई समर्थ को याद करके बोलना। कोई बुलवा रहा है तो बोलना। 'प्रभुपरायण' शब्द था। चौथा था, प्रेमपरायण होकर बोलना। आक्रोश में नहीं, प्रेम से बोलना। द्वेष से नहीं, स्नेह से बोलना; निदान करना; ये सब उनकी संशोधित आवृत्तियां है। पांचवीं और अंतिम बात थी परमार्थपरायण होकर बोलना, स्वार्थ परायण होकर मत बोलना।

उस समय मेरी उम्र दस-बारह साल की रही होगी। उस समय मैंने दादा को कहा कि ये पांच जिसमें से एकाद कम कर दिया जाय तो? क्या करूं, मैं पांचोपांच ना निभा पाउं तो? तो कहा कि बेटा, पीठपरायणता छोड़ देना। पीठ हो तो ठीक है। रेती में बैठकर भी बोल देना। और मैं खड़े-खड़े, चलते-चलते अकेला बोला हूं। रेल्वे लाईन पर चलते बोलता था और हिन्दी में बोलता था।

मैंने कहा दादा, ये चार भी ना निभाई जाय तो? बोले, पोथीपरायण भी छोड़ देना, लेकिन शुभ बोलना जो बोलो। मैंने बोला, अभी कुछ छोड़ दिया जाय? तो बोले, प्रभुपरायणता छोड़ देना। किसी बालक की बात करना। किसी खेत की, मजदूर की बातें करना। यहां सब परमात्मा है। ये भी छोड़ी जा सकती है। मैंने कहा, अभी ये दो भी ना निभा पाउं तो? तो बोले, प्रेमपरायणता भी छोड़ देना। जीव है, शायद प्रेम से ना बोला जाय। बोलते-बोलते भाव न जगे तो ये चौपाई याद रखना-

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

ये दादा का सूत्र था बेटा, आख़िरी सूत्र कभी ना छोड़ना। परमार्थपरायणता कभी मत छोड़ना। स्वार्थ नहीं होगा और परमार्थ में टिका रहेगा तो पीठ शाश्वत होगी, पोथी उड़ान भरायेगी, प्रेम महेक जायेगा, प्रभु चारों ओर से तुम्हें घीरे रहेंगे। आदमी केवल अपना ही सोचता है। तुलसीदासजी कहते हैं, 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।' मतलब स्वकेन्द्रित न रहना। व्यासपीठ के पास आप हेतु लेकर आओगे तो टिकोगे नहीं। यहां तो केवल हेतु बिना आओगे तो मैं धक्का मारूंगा तो भी नहीं जाओगे। ओशो के पास कई लोग हेतु लेकर गये। हेतु सिद्ध न हुआ तो माला भी निकाल दी! भगवे कपड़ें भी निकाल दिये! ओशो की ओशो जाने! हम अपनी सोचे। 'नारद भक्तिसूत्र' का एक अद्‌भुत सूत्र है, 'कामना रहितं गुणरहितं अविच्छिन्नं' आदि-आदि छः सूत्र है।

मीरां ने उधार उद्‌घाटन नहीं किया। मीरां ने प्रेम-बीज को अपने आंसूओं से खुद का जल सींचा और प्रेम बेल बोई।

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।

न विचारों से डरने की जरूरत है, न प्यारों से डरने की जरूरत है। तो -

माया खलु नर्तकी बिचारी।

नृत्यांगना जो होती है वो कोठे पर नाचती है और उसका नाच दो-तीन घंटे चलता है। भक्ति का नर्तन आठे पहोर आनंद। वो प्रोग्राम पूरा नहीं होता। नर्तकी को ताल और गान के साथ नृत्य करना है। कीर्तन भक्ति है कि वो स्वयं नाचेगी, स्वयं गायेगी, स्वयं वाद्य बजायेगी। मीरां गाती है, एकतारा बजाती है और नाचती भी है। अभंग खुद गाये, खुद बजाये और खुद नाचे। माया ऐसी नर्तकी है। और नर्तकी आंखों में काजल लगाती है। और भक्तिरूपी कीर्तन की आंख में काजल नहीं, कनैया होता है। वृंदावन धन्य है जहां भक्ति कीर्तन करती है। नृत्यांगना सुरमा लगाती है और कीर्तन सुरता रखती है। वहां सुरता की प्रधानता है। नृत्यांगना के कोठे पर बहु तंतु वाद्य बजाया जाता है। भक्ति में बहु तार नहीं होता, केवल मीरां का एकतार ही होता है।

नर्तकी पराधीन है। वहां वाह-वाह होती है, दुबारा-दुबारा होता है। नृत्यांगना माया पराधीन है। दूसरे के ईशारे पर नाचना है। भक्ति स्वतंत्र है। कीर्तन स्वतंत्र है। फरमाईश पर तुकाराम ने अभंग नहीं गाये। फरमाईश पर मीरां ने नृत्य नहीं किया। उसकी कोई मालकिन नहीं थी। मालकिन था तो केवल पांडुरंग था, विठोबा था। ये भेद है। भक्ति वैष्णवों को नचाती है। दोनों जगह रसिक होते हैं और नर्तकी के रसिक। एक रस रजोगुणी है, एक रस सतोगुणी है। इतना भेद है। नर्तकी के पास ईशारे होते हैं। माया ऐसी नर्तकी है इनके पास ईशारे होते हैं लेकिन भक्ति ऐसा नर्तन है इनके पास ईशारे नहीं, अश्रु होते हैं। आंखें डबडबाती है।

एक भेद ओर; नर्तकी बोल पर नाचती है, ताल पर नाचती है। भक्ति हरि बोल पर नाचती है, 'हरि बोल, हरि बोल', 'विठ्ठल, विठ्ठल।' नर्तकी किस प्रकार का नृत्य करे, पखवाज हो, तबले हो, जो हो; कई प्रकार के ताल बजते हैं, नर्तकी कई ताल पर नाचती है। भक्ति केवल, केवल जपताल पर नाचती है।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

भक्ति के कीर्तन में जपताल, हरिनाम का कीर्तन होता है। नारायण का जप। माया नर्तन कराती है तो मोह प्रगट होता है। जब कीर्तन होता है तो मोह नहीं होता, होम होता है। भक्ति के कीर्तन में वाह-वाह नहीं, स्वाहा-स्वाहा। अपने समस्त अहंकार को खतम करना है।

नर्तकी नर्तन करती है तो बहुधा मुज़रा कहते हैं, मुज़रा होता है। कीर्तन में मुज़रा नहीं होता, मंज़ीरा होता है। नर्तकियां मेकअप करती है। भक्ति का कीर्तन मेकअप नहीं, वेकअप करता है। नर्तकियां रंगबीरंगी कपड़ें पहनती है। भक्ति में रंगबीरंगी नहीं होता।

मैं तो ओढुं काळी कामळी
जेमां दूजो रंग न लागे कोई।

भक्ति तो शुक का जूठा है; शुकदेव के मुख से जो गिरा है।

किसीने प्रश्न पूछा है, 'बापू, शुकदेवजी ने 'भागवत'की कथा परीक्षित को सुनाई। कथा पूरी होने के बाद परीक्षित की मुक्ति हुई, शुकदेवजी कहां गये? शुकदेवजी केदार गये 'भागवत' पूरा होने के बाद। केदार निर्वाण का पंथ माना गया है। लेकिन मुझे बहुत खुशी है कि वाया नीलगिरि गये। शुकदेवजी कागभुशुंडि के आश्रम में गये। खग खग की भाषा जाने। और जैसे शुक ने प्रवेश किया, भुशुंडि खड़े हो गये, 'मारे घेर शंकरनो अवतार पधार्या।' उड्यु पंखी! शुकदेव पूछते हैं, भुशुंडि का आश्रम कहां है? तुलसी चौपाई लिखते हैं-

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।
तहँ रह काकभुसुडि सुसीला।।

पैर धोये। भुशुंडि ने चंचु से चरणस्पर्श किया, आज मेरी रामभक्ति सफल हुई। आज मुझे रामकथा का शाश्वत गायन उसका परिणाम मिला। कागभुशुंडि ने कहा, शुकदेवजी महाराज, समय हो तो मुझे कृष्णकथा सुनाओ। पक्षी ही पक्षी के पास जाते हैं। क्या जवाब दिया है शुक ने? महाराज, मैं तो आप से रामकथा सुनने आया हूं। रामकथा एक बार सुन लूं फ़िर तुलसी के समान बोलूंगा, 'पायो परम विश्राम।' एक अर्थ में कहूं तो दोनों शाश्वत महापुरुष है। 'भागवत'कथा चलती रहेगी। कथा महादान है। याद रखना, भगवान की कथा से उत्तम कोई दान नहीं है। जो केवल वक्ता दे सकता है। कौआ भी बहुत चतुर माना जाता है। 'परम प्रबीना' है। इसको आज तक किसीने पिंजड़े में बंद किया ऐसा नहीं है। और शुक के लिए क्या कहूं? वो तो चतुर शिरोमणि है।

शुकदेवजी ने कहा, शुक के रूप में 'भुशुंडिबाबा, आप मेरे पास कथा मांग रहे हैं, महादान, कथा का दान करो ऐसा कह रहे हो तो मैं आप से कुछ पूछूं? आप की क्षमता तो है ना?' भुशुंडि ने कहा, 'कोई क्षमता नहीं, जोली खाली है।' 'और सुना है, आप का स्वभाव ऐसा है कि जिसे ख़ाली देखा उसे भर डाला। आप दूसरे भू भाग के पक्षी है, मैं दूसरे भू भाग का। तो आप पूछ रहे हैं तो मैं अपना चातुर्य पेश करूं?' हां। सुना तो मैंने ऐसा है कि तोते को लोग पिंज़ड़े में बंद कर देते हैं, कभी कौए को किसीने पिंज़ड़े में बंद नहीं किया! इसमें खुद की स्वतंत्रता की बड़ाई और शुक की परतंत्रता की निम्नता नहीं है। दो वैष्णव मिले हैं, परम आचार्य मिले हैं। लेकिन ये चतुर शिरोमणिओं का संवाद है। बोले, आप जिसकी कथा कहते हो उनका रंग भी काला, मेरा भी काला है। काले को काला दे दो। और शुकाचार्य, आप तो त्रिकालज्ञ हो, जानते होंगे मैं नीलगिरि पर्वत पर क्यों रहता हूं। मैं केदार पर नहीं रह सकता? मेरा वर्ण से नाता है। मुझे कथा का दान करो। मैं श्याम वर्ण हूं और कृष्ण श्याम है। मेरा ठाकुर नीलवर्णा है इसलिए मैं नीलगिरि पर रहता हूं। और भुशुंडि की योग्यता देखकर शुकदेवजी ने कथा सुनाई। दोनों कृतकृत्य है। 'भुशुंडि महाराज, आप श्रोता है, मैं वक्ता हूं। अब मुझे जो बोलना है, मैं बोलूंगा। तेरे पास विस्तार से मैं रामकथा गाउंगा।'

तो बाप, रामकथा भुशुंडि को शुकदेवजी ने सुनाई।

किसीने प्रश्न पूछा है, 'आत्मा नर्तक है बापू, तो इसका मंच क्या है? इसका सूर-शृंखला क्या है? आत्मा नर्तन करे तो कौन-सा सूर लगता है? आत्मा शृंगारित कैसे होती है?' मैं जरूर कल इस पर कहने की कोशिश करूंगा। एक बात कह दूं, आप ने शिवसूत्र का पाठ किया होगा तो आप को पता होगा, रंगमंच है अंत:करण। आत्मा नृत्य करती है अंत:करण के स्टेज पर। प्रोजेक्टर पीछे होता है, प्रतिफलना सामने होती है। परदा न रोता है, न हंसता है। समंदर में सुनामी आ जाय सिनेमा के स्क्रिन पर लेकिन सिनेमा के स्क्रिन का एक धागा भी भीगता नहीं। सिनेमा में हनुमानजी लंका जला दे लेकिन एक धागा जलता नहीं। ये असंग है। मुझे कहने दो, आत्मा अंदर नाचती है। उसका प्रतिफलन है ये नाचता हुआ जगत। निरंतर रास चलता है गेब का। ब्रह्मांड का ये रास चलता है। तुम्हारे भीतर देखो, प्रोजेक्टर चल रहा है उसका प्रतिफलन।

जिस आत्मा ने नर्तन बनकर अपने अंत:करण को स्टेज बना लिया वो कभी मुझे ऐसा स्टेज चाहिए, ऐसी माईक सिस्टम चाहिए, ऐसा नहीं कहते। ये अंत:करण जिसका मंच होता है उसकी सभी मांगे पूरी हो जाती है। वो नाचना ही जानते हैं। उसके लिए नाचना ही शेष रहता है। बहिर् नृत्य में ये सब मांग होती है। नर्तक है कर्ता, नर्तन है कृत्य। यहां कर्ता और कृत्य एक हो जाता है। ये बात जब समझ में आती है तब आत्मा नर्तक की कोई सीमा नहीं रहती। ये असीम रास, ये महारास निरंतर चलता है; चलता रहेगा।

आज मुझे कहने दो, कथा क्या है? महानृत्य; ये कथ्थक नृत्य है। यहां हम सब महानृत्य में शरीक है। श्रोता वक्ता सब शायद हो सकता है। देवतागण दर्शक हो। 'बालकांड' में लिखा है, ससुर का कैसे सन्मान करना।

करि बर बिनय ससुर सनमाने।
पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने।।

विनय करके ससुर का सन्मान करना और विनय भी श्रेष्ठ विनय, दिल के विवेक से। पिता के समान मानकर, विश्वामित्र के समान मानकर और वशिष्ठ के समान मानकर। राम ने पिता के समान जनक को सन्मान दिया क्योंकि जनक के घर जानकी प्रगटी है और जानकी-राम एक है। तत्त्वत: दोनों एक है। इसलिए पिता समान सन्मान किया। दूसरा, कौशिक समान सन्मान किया, क्योंकि महाराज, आप ने प्रतिज्ञा की लेकिन पूरी कैसे होती यदि विश्वामित्र मुझे यहां न लाता? जानकी है परम विद्या, परम संपदा। धनुषयज्ञ का संदेश उसने मुझे दिया उसके द्वारा मैं यहां आया और आप ने मुझे जानकी प्रदान की इसलिए आप मुझे विश्वामित्र के समान दिसते हो। और वशिष्ठ मेरे कुलगुरु है और ये कुलगुरु ने कहने पर मुझे भेजा गया और आज आप की कृपा से मुझे कन्या दी। आप में मुझे वशिष्ठजी भी दिखता है। ससुर का सन्मान भी 'रामचरित मानस' सिखाती है। उसको भी पितातुल्य आदर देना, गुरुतुल्य आदर देना।

मेरे दादाजी कहा करते थे कि वक्ता में पांच लक्षण है। पांच वस्तु बताई थी कि पांच परायणता को अकबंध रखना। कहा था, गाना है, बोलना है तो पीठपरायण रहना। खड़े-खड़े बोलना लेकिन वक्तव्य के परायण रहना। दूसरा सूत्र था, पोथीपरायण रहना कि तू रामकथा की पोथी लेकर बैठेगा तो पोथीपरायण हो, केन्द्र में पोथी रहे। पोथीपरायण मीन्स सब्जेक्ट परायण, विषयपरायण। तीसरी बात, प्रभुपरायण रहकर बोलना; कोई समर्थ को याद करके बोलना। चौथा सूत्र था, प्रेमपरायण होकर बोलना। आक्रोश में नहीं, प्रेम से बोलना। द्वेष से नहीं, स्नेह से बोलना। पांचवीं और अंतिम बात थी, परमार्थपरायण होकर बोलना, स्वार्थ परायण होकर मत बोलना।

आत्मनर्तन की परिणति शांत और करुण रस में होती है

मानस-नृत्य ।।५।।

'मानस-नृत्य', जिसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में यहां हो रही है। कल पूछा गया था कि 'बापू, आत्मा नर्तक है तो इस नृत्य का रंगमंच आधार क्या है? यदि नृत्य है तो स्वाभाविक है गीत, संगीत, नृत्य, सूर ये सब मिलकर होता है। उसमें सूर-शृंखला क्या है? तीसरी जिज्ञासा है, किस रस में परिणति होती है इस नृत्य की? आत्मा जिसमें नर्तक है इस रस की अंततोगत्वा किस रस में परिणति होती है? आखरी प्रश्न है, आत्मा कोई नर्तन करेगा वो शृंगार भी करेगा स्वाभाविक है, तो आत्मा शृंगारित कैसे होती है? आत्मा का शृंगार क्या है? इस नृत्य की कोई मर्यादा है बापू? कुछ कहे।'

मैं एक बार तथागत बुद्ध के शब्द को दोहराउं कि मोरारिबापू कहे इसलिए मान मत लेना। आपकी आत्मा कबूल करे, आपकी विवेकबुद्धि से ही छोड़ना या पकड़ना ये आपकी विवेकबुद्धि पर निर्भर है। 'शिवसूत्र' में ओलरेडी लिखा है कि रंगोतर आत्मा, उसका जो रंगमंच है वो अंतरात्मा है। अंतरात्मा का अर्थ भाष्यकारों ने किया है, अत:करण मंच है। आत्मा स्टेडियम में नहीं नाचती, आत्मा जब भी नर्तन करेगी तो साधक के अंत:करण को मंच बनाकर ही नाचेगी। ये जवाब तो ओलरेडी 'शिवसूत्र' का है। हमारा अंत:करण मंच है।

आत्मा जब नर्तन करेगी तो गाना ही तो होगा। किसीका स्वर होगा और किसी का स्वर कौन से सूर में चला, सूर-शृंखला क्या है आत्मा नर्तन की? आप जानते हैं, सात सूरों का ये खेल है। यहां जो भी आवाज़ आती है ये घोंघाट तभी बन जाते हैं जब हार्मनी नहीं होती। हार्मनी हो जाय तो कोई न कोई एक राग बन जाता है। तो, सूर तो सात है और वो सात सूर है 'सा रे ग म प ध नि सा।' फिर गायक को 'सा' पर जाना है। आत्मा नर्तन की सूर-शृंखला का 'सा' क्या है, 'रे' क्या है, 'ग म प ध नि' क्या है? मुझे पूछा है तो अपने ढंग से मेरे गुरु जो प्रेरणा करे वो कहूंगा। आप सुनिये। यद्यपि शब्द ब्रह्म है, लेकिन शब्दब्रह्म जाल बहुत बिछा जा सकता है, ये सत्य हम ना भूले। शब्द जब किसी संत के मुख से निकलता है तब मोह की निवृत्ति होती है। मेरे गोस्वामीजी कहते हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।
मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं ।
बचन सुनत मन मोहगत, पूरुब भाग मिलाहिं ।।

तो, आप अपनी विवेकबुद्धि से मूल्यांकन कीजियेगा। 'धर्म कल्पद्रुम', 'योग कल्पद्रुम' आदि-आदि जो बहुत पुराने ग्रंथ है, उसमें एक सूत्र बिलकुल कोमन मिला है, सरलोआत्मा। आत्मारूपी नर्तक की जो सप्तसूर की शृंखला है उसका 'सा' है मेरी दृष्टि से आत्मा का सारल्य। ध्यान रखना, मन कुटिल है, बुद्धि वक्र है, चित्त डामाडौल है, अहंकार

बिलकुल मूढ और जड़ है। आत्मा बहुत सरल है। आत्मा बालकवत् है, शिशुवत् है। आत्मा न पढ़ी-लिखी है, न अनपढ़ है। आत्मा न चतुर है, न कुछ है। आत्मा न जाती है, न आती है। 'भगवद्गीता' से आप बहुत परिचित है, आत्मा न भीगती है, न सुखती है। न मरती है, न जन्मती है। और कोई नर्तक होता तो इसमें सारल्य ना भी हो, संभावना है। आत्मा तो बांटने की संपदा है। अल्लाह करे, कोई किसी की आत्मा को ना बेचे। बांटो, बांटो। यदि तुम भर गये हो तो एक ही काम बाकी है, बांटना शुरू करो। एकनाथ ने बांटा, नामदेव ने बांटा। जगद्गुरु तुकाराम ने चारों हाथ बांटा। मन कुटिल है, आत्मा कुटिल नहीं हो सकती। 'भगवद्गीता' में कहते हैं, बुद्धि तो कभी-कभी व्यभिचारिणी भी हो सकती है। चित्ततंत्र मेरा और आपका डामाडौल है। अहंकार ने हमें जड़ कर दिया है।

रामकथा के 'सुन्दरकांड' का पारायण करते हो, सुनते हो तो प्लीज़, इतना भी सीखो कि हनुमानजी जब लंका में गए और लंका में जब असुरों ने उसको जलाने का फैसला किया तब कहा, कपि की ममता पूंछ पर होती है, उसको जलाओ। तो श्री हनुमानजी ने क्या किया? अग्नि जब भड-भड जल रही थी तो गोस्वामीजी कहते है, हनुमानजी ने एकदम छोटा रूप ले लिया। जीवन का ये दैन्य है, जीवन का ये सारल्य है। जगत जब जलाने की कोशिश करे, हे साधो, हे भिखु, तब छोटे हो जाओ। हनुमानजी दीक्षित करते हैं। न हनुमानजी ने नागपाश के फंदे तोड़ने की कोशिश की, न किसी ने आकर छोड़ने की मदद की। श्री हनुमानजी ने सोचा, एक तो मैं बंधा हूं, दूसरी ओर पूंछ जलाई गई है! अब क्या करूं? जलना मेरी नियति है क्या? इसलिए श्री हनुमान एकदम इतने छोटे हुए। बंधन को तोड़ना न पड़ा, बंधन से खुद निकल गए। इसको 'सुन्दरकांड' का दीनता का योग कहते हैं। इसको कहते हैं भक्तियोग।

हम जीव है। माया का फंदा कैसे कटेगा? कहां सामर्थ्य है? कौन छुड़वाने आयेगा? दुनिया तो और बंधन डालेगी! शरणागति, दीनता; एक तू है, बस। अपनेआप सरक गए। बंधन से निकल गए। श्री हनुमानजी ने उसके बाद तुरंत विशाल रूप धारण किया। अपने शरीर को बहुत विस्तृत किया। और शरीर इतना विस्तृत किया कि हनुमानजी का सिर आसमां को छूने लगा था। ये है 'गीता' का कर्मयोग। आदमी कर्म को बढ़ाता जा रहा है। हनुमानजी ने कर्मयोग बताया कि आदमी की कर्म की विस्तृति की कोई याद नहीं है। इसीलिए 'गीता' एक शब्दप्रयोग करती है-

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त: स मे प्रिय:।

हे साधो, आरंभ मात्र छोड़ो। गोस्वामीजी कहते हैं -

अनारंभ अनिकेत अमानि ।

साधु कौन है? जो अनारंभ है। होने देता है, करता कुछ नहीं। हम सबकी प्रवृत्तियां आसमान को छू रही है। योग का प्रधान सूत्र है, चित्त को निरोध करो। ज्ञानमार्ग का प्रधान सूत्र है, बोध प्रकट हो ताकि समाज में विरोध शांत हो जाय। गोस्वामीजी मंगलाचरण में कहते हैं, गुरु कैसा?

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र: सर्वत्र वन्द्यते ।।

गुरु बोध का बना हुआ है। मिट्टी का गुरु नहीं बनता। दिखाव में बुद्धपुरुष, सद्गुरु का शरीर भी पंचभौतिक होता है। लेकिन तत्त्वत: वो बोधमय शरीर है। वाल्मीकि 'मानस' में कहते हैं, राघव, तुम्हारी काया चिदानंदमय है, बोधमय है। जहां छूउं वहां बोध छूता हूं। योगमारग निरोध में मानता है। ज्ञानमागर बोध में मानता है। कर्ममारग में अवरोध ही अवरोध है। भक्तिमारग का सूत्र है, प्रेम से केवल अनुरोध, हे हरि, हे हरि! मैं केवल अनुरोध कर सकता हूं दाता! मैं दबाव नहीं कर सकता। जीव हूं, अनुरोध करूं।

भक्त क्या कर सकता है? भगत मन का निरोध करने में समय बितायेगा? नहीं। भगत क्या प्रतीक्षा में समय बरबाद करेगा? न को। आश्रित मेरी क्रिया में, मेरी प्रवृत्ति में अवरोध आ रहे हैं, उसकी चिंता करके उदास बैठेगा? नहीं। आश्रित का एक ही धरम है, अनुरोध। हरेक परिस्थिति की समीक्षा करेगा। पीड़ा दी वो भी तेरी

कृपा। प्रसन्नता दी तो भी तेरा प्रसाद। मैं अनुरोध का अनुगामी हूं। भरत क्या करता है 'मानस' में?

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई।

शंकराचार्य कहते हैं, 'यथा योग्यं तथा कुरु।' और अनुरोधी भक्ति में तो वहां तक कहते हैं कि कभी-कभी तो ईश्वर हमको कह देता है कि बच्चा, अब तेरी इच्छा हो सो कर! 'यथेच्छसि तथा कुरु।' विशाल कर्मो अवरोध का भय है। कार्यों में उलझना मत। श्री हनुमानजी ने विशाल कर्मयोग बताया। अब मैं ही सुतर्क कर रहा हूं कि हनुमानजी इतने विशाल बने तो जिस अटारी पर चढ़े होंगे वो भवन तो लंका के धस गये होंगे। एक भी मकान धसा नहीं! क्यों? क्योंकि देह तो आसमां तक फैलाया, लेकिन भारी जरा भी नहीं। कर्म करो, वजनदार ना होओ। निर्भार रहो। सोना भी बच जायेगा। पाश से मुक्ति भी मिल जायेगी। वैष्णव भी मिल जायेगा और वैष्णवी भक्ति सीता भी मिल जायेगी। सभी योग का दर्शन है 'सुन्दरकांड' में। आदमी में जब दीनता आती है तो भवबंधन मिट जाता है। आदमी सरल-तरल हो जायेगा। आखिर में हनुमान ने लंका जला दी, मानो ज्ञानयोग का प्रयोग किया। भस्मसात् कर दिया!

मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि मन कुटिल है, बुद्धि वक्र है, चित्त चंचल है, अहंकार की जड़ता से अल्लाह बचाये। 'सा रे ग म प ध नि' जो सूर-शृंखला है वो आत्मा का सारल्य है। आत्मा तो सादगी से भरा है। आत्मा की कोई गणवेश नहीं। आत्मा का कोई रंग नहीं। आत्मा न घन है न प्रवाही है। आत्मा आत्मा है। आत्मा की बिलग-बिलग व्याख्या 'शिवसूत्र' में भगवान शिवजी करते हैं।

लाओत्सु कहते हैं, आदमी का स्वभाव ही धर्म है। आदमी का स्वभाव ही उसकी आत्मा है। तुलसीदासजी ने स्वभाव को सरल कहा और मन को कुटिल कहा है। जीवनभर सरल होना पड़ेगा, तभी आत्मा का 'सा' पकड पायेंगे। तभी प्रथम सूर पर उंगली रहेगी। तो मेरे भाई-बहन, आत्मा नर्तक है तो उसकी सूर-शृंखला का 'सा' है, ये जीव का साधक का सारल्य है।

आप घर में प्रसन्नता से रहोगे तो घर में सब प्रसन्न रहेंगे। घर पर रेहमत बरसने लगेगी। 'रे' का मतलब है रेहमत। आत्मा सदैव प्रसन्न रहती है। लेकिन इस प्रसन्नता की महसूसी जब गुरुकृपा से साधक करता है तो अकेले पर नहीं, पूरे विश्व पर रेहमत बरसती है। आत्मा नर्तक की सूर-शृंखला का दूसरा सूर 'रे' मेरी समझ में ऊतरा है रेहमत, करुणा, कृपा। हमारे आंतरिक जीवन में प्रसन्नता बरसने लगे, जिसके हम आश्रित है इस बुद्धपुरुष की करुणा समझियेगा। हमारे कर्मों पर हमारी प्रसन्नता आधारित होती तो हम चौबीस घंटे प्रसन्न रह सकते थे। लेकिन असंभव है। साधक की आत्मा जब अंत:करण के पट पर नाचती है तो उसकी सूर-शृंखला में जो 'रे' आता है वो ईश्वरीय रेहमत का बरसा। ये किसी की करुणा की फलश्रुति है। सुख हमारे कर्मों का फल हो सकता है, दु:ख हो सकता है, लेकिन प्रसन्नता हमारे करुणा की देन है। कई लोगों के पास सुख की कोई सीमा नहीं, प्रसन्नता बिलकुल नहीं! साधनों की कोई सीमा नहीं, साधना बिलकुल नहीं! एक वस्तु याद रखना, इस संसार में जितना जो ज्यादा होशियारी करेगा, अंततोगत्वा ज्यादा छला जायेगा। इसलिए गोस्वामीजी ने बहुत बड़ा सूत्रपात किया।

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई।
भजन कृपा करिहहिं रघुराई।।

अचानक प्रसन्नता आ जाये, समझना तुम्हारे बुद्धपुरुष ने तुमको याद किया। ये निमंत्रण है, रेहमत है।

कोठे पर नर्तकियां नाचती है और भक्ति भी कोठे में होनी चाहिए, केवल होठ पर नहीं होनी चाहिए। नृत्यांगना नर्तन करती है तो अक्सर रूमाल रखती है, लेकिन भक्ति नृत्य करती तो हाथ में करताल रखती है, 'हे हरि, हे हरि', 'विठ्ठल, विठ्ठल'; या करताल रखती है। और ध्यान देना, कोठे पर नाचनेवाली नर्तकी बूढ़ी हो जा सकती है, लेकिन भक्ति कभी बूढ़ी नहीं हो सकती।

भक्ति सदैव युवान है। ज्ञान-वैराग्य बूढ़े हो गये! नित्य-यौवना है भक्ति। और नर्तकियां जो कोठे पर नाचती है वो संतान की माँ नहीं बन सकती, लेकिन भक्ति ब्रह्म को भी बेटा बना सकती है, परमानंद को भी बेटा बना सकती है। नर्तकी के दो रस होते हैं। एक तो शृंगार रस होता है। लेकिन दूसरा है थोड़े अभद्र नृत्य होते तो आता है बीभत्स रस। तमोगुणी या रजोगुणी अदायें। भक्ति भी शृंगार करती है, लेकिन उसका रस होता है या तो शांत रस या तो करुण रस। और एक भेद; नृत्यांगना जो है वो जात नहीं बता सकती और भक्ति जात बता देती है। प्रमाण -

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।

कोई नर्तकी शृंगार करती है, लेकिन दो शृंगार नहीं कर सकती। मांग में सिंदूर और गले में मंगलसूत्र नहीं डाल सकती। लेकिन भक्ति जब मैदान में आकर कीर्तन करती है तो नारद के चौरासी सूत्र मंगलसूत्र है, क्योंकि ये सुहागन है। और माया की मांग कभी भरी नहीं जाती। नृत्यांगना का रात का समय होता है। भक्ति का तो रात-दिन कोई ठिकाना ही नहीं! हरिनाम रोकड भक्ति है। सारमां सार एक हरिनाम है।

दर्दने गाया विना रोया करो।
प्रेममां जे थाय ते जोया करो।

'सा' मानी आत्मा का सारल्य, 'रे' मानी रेहमत। 'रे' मानी आत्मनर्तन का एक प्रसन्नता से भरा आलम। तीसरा सूर 'ग',

गदगद गिरा नयन बह नीरा।

जब आत्मा नर्तन करती है तो जिस घर में आत्मा बैठी है और नर्तन कर रही है वो घर गा नहीं पाता, वाणी गद्‌गदित होती है, ये तीसरा सूर है। आत्मा के उपर ममता के कषाय, ममता के वस्त्र चढ़ जाते हैं, और आत्मप्राप्ति साधक को होती है तब ये ममता का आवरण मिट जाता है। आत्मा का ये चौथा सूर 'म' है ममता से मुक्ति। देह आडंबर कर सकता है, आत्मा आडंबर नहीं कर सकती। आत्मा उसको कहते हैं जो प्रपंचमुक्त है। 'प' का सूर है प्रपंच से मुक्ति। अब कोई खेल नहीं। 'ध'का मेरा अर्थ है धैर्यकंथा, धीरज; जल्दी नहीं। 'नि' का अर्थ है आत्मा जब नर्तन करती है तो व्यक्ति संसार की कई प्रकार की मायाओं की ग्रंथिओं से निर्ग्रंथ हो जाता है। तमाम ग्रंथि उसकी छूट जाती है। कोई ग्रंथियां उसको आबद्ध नहीं कर सकती।

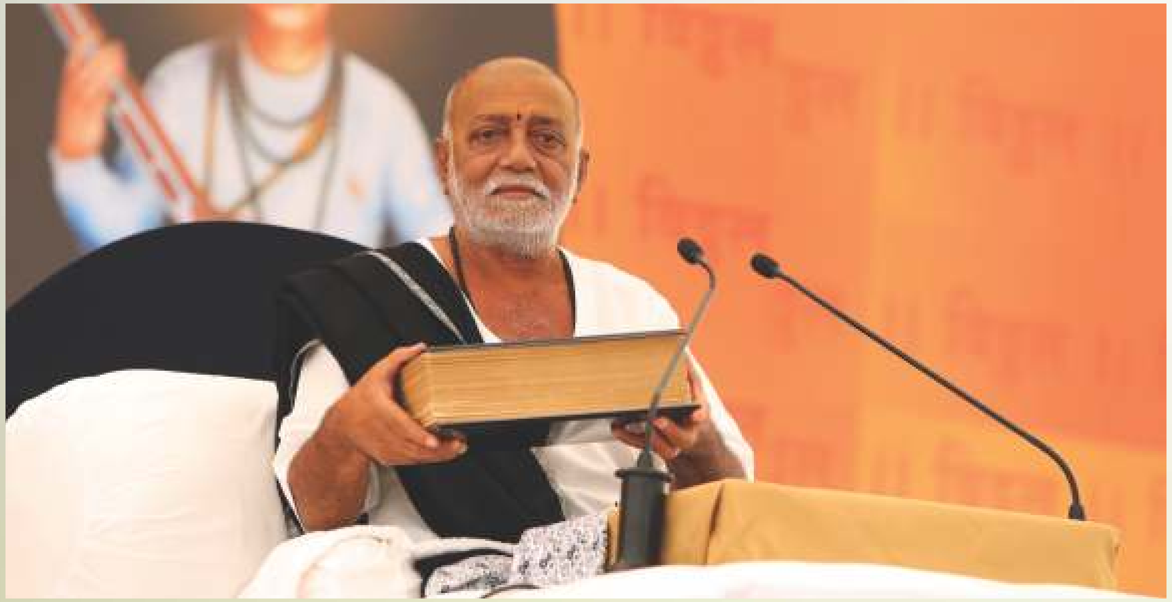

सवाल है, किस रस में परिणति होती है इस नृत्य की? शान्त और करुण दो ही रस में आत्मनर्तन की परिणति है। शिवजी जैसा कोई नर्तक नहीं है और जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने शिव को आत्मा कहा है अथवा तो आत्मा को शिव कहा है।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः।

शंकर नटराज है। सकल कला गुणनिधान है। 'कर्पुरगौरं करुणावतारं।' करुणामूर्ति है शिव। और शंकरजी बैठते हैं तो शान्तरस है। आत्मा शृंगारित कैसे होती है? मुझे ऐसा लगता है, आत्मा का शृंगार एकमात्र है ध्यानरस। ये उनका शृंगार है। ध्यानरस में डूबी हुई आत्मा सुशोभित लगती है। इस नृत्य की कोई मर्यादा नहीं। ये शाश्वत नृत्य है। जगत में ये निरंतर चलता है। उसकी कभी पूर्णाहुति नहीं होती। गुजराती संतवाणी में गाया है-

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

वैद के घर की औषधि का पता नहीं चलता। उनकी औषधि वैद ही जानता है। बीमार ने तो भरोसा लेकर औषधि ले लेनी चाहिए। गुरु की महिमा का पता नहीं चलता। गुरुमहिमा अपार है।

कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा।

ये मेरे शब्द नहीं है। शब्द है भगवान साक्षात् परब्रह्म रामजी के, 'हे विभीषण, गुरु ये कभी न काटा जाय ऐसा आश्रित का अभेद कवच है। कोई जिसको छेद न पाये।' ये राम के शब्द है। मैं बहुत बार बोला हूं कि जिसको गुरु मिल जाता है उसके माँ-बाप कभी नहीं मरते। क्योंकि गुरु माँ की गरज पूरी कर देता है, बाप बनकर खड़ा रहता है। और गुरु का एक समय होता है। जब हमें जरूरत होती है तब आता है। मेरी समझ में गुरु के तीन लक्षण उतरे हैं। पहले-पहले गुरु साधक की रुचि के अनुसार काम करता है। लेकिन जब गुरु, बुद्धपुरुष आश्रित को समझ लेता है फिर उसकी हर रुचि नहीं पूरी करेगा। और हम कहां मार खा जाते हैं कि बहुत रुचि पूरी की बुद्धपुरुष ने और फिर अंक बदला, स्टेज बदला साधक के हित में, और हमारी एकाद रुचि पूरी न की तो हम डिप्रेस हो जाते हैं! गुरु का इरादा होता है शुरू में रुचि देखना। उसके मुताबिक शिष्य पर काम करना। उसके बाद रुचि देखना बंद करता है, उसका हित देखता है। और फिर हित देखते-देखते स्टेज बदल देता है और उनका परमहित किसमें है, ये देखना शुरू कर देता हैं। नारद ने मांगा था ठाकुरजी के सामने कि मुझे आपका रूप दे दो। मैं विश्वमोहिनी को पीना चाहूं, लेकिन प्रभु ने तुरंत कहा-

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ।।

'नारद, तू हित मांगता है, लेकिन तेरा परमहित होगा वो ही होगा।' मेरी दृष्टि में गुरुमहिमा अपरंपार है। मैं तो पूर्णतः मानता हूं कि गुरुकृपा नहीं होती तो मोरारिबापू कुछ नहीं होता। ये केवल गुरुकृपा है। वैष्णव संप्रदाय का सुरदास का पद-

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

आप जब व्यस्त हो तो अपनी बुद्धि को पूछकर काम करना, लेकिन जब अवकाश मिले तो गुरु को पूछकर आगे बढ़ना। क्योंकि अवकाश ही पाप कराता है। एकांत ही विकृति को जन्म देता है। पाकिस्तानी शायराना परवीन शाकिर की ग़ज़ल का ये शे'र है -

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझ पे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

हे गुरु, मुझे इस मारग पर चलना ही नहीं, जो मारग मुझे तुझसे बिलग कर दे। अवकाश में लोग बुद्धि लगाते हैं और जहां बुद्धिपूर्वक काम करने की स्वतंत्रता हमको अस्तित्व ने दी है वहां हम किसी का आधार खोजते हैं। लेकिन अवकाश मिला, छोड़ो हरि पर।

मैंने तुकाराम भगवान का एक पद पसंद किया है। उसका यदि मेरी व्यासपीठ मंथन करे तो समुद्र में से

चौदह रत्नों निकले थे ये चौदह रत्नों उनमें से भी निकले। सबसे पहले श्री निकलती है। जैसे 'रामचरित मानस' में भरत का कोई मंथन करे तो चौदह रत्न निकलते हैं। ब्रह्म का कोई मंथन करे तो वो अमृत निकले। संतों की महिमा बड़ी अद्भुत है। सवाल है भरोसा। भरोसा ही भजन है। छोड़ो यार, भरोसा ही भगवान है। प्रमाण -

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

'रामचरित मानस' में याज्ञवल्क्यजी से भरद्वाजजी ने प्रश्न पूछा कि रामतत्त्व क्या है और रामतत्त्व सुनाने से पहले याज्ञवल्क्यजी ने शिवचरित्र सुनाया। विश्वास और श्रद्धा की शादी करवाई। जब तक श्रद्धा और विश्वास का ब्याह न हो तब तक राम नहीं प्रकट होते। दोनों की शादी हुई, कार्तिकेय का जनम हुआ। ताड़कासुर का नाश हुआ। एक बार कैलास के सदाबहार शिखर पर बेदबिदित वटछांव में महादेव बैठे हैं। पार्वती अवसर देखकर आती है और शिवजी से प्रश्न करती है, प्रभु रामतत्त्व क्या है? और सुनते ही पार्वतीजी को शिवजी ने धन्यवाद दिया। क्योंकि आपने ऐसी जिज्ञासा की कि मेरी जटा से गंगा वही वो तो भगीरथ लाया था, लेकिन मेरे मुख से रामकथा की गंगा निकलवाने जा रही है इसलिए तुम धन्य हो। भगवान की कथा के जो निमित्त बन जाते हैं वो धन्यवाद के पात्र बन जाता है। मेरे पास एक चिठ्ठी में पूछा गया है कि कथा के आयोजन कैसे होने चाहिए, व्यवस्थापक कैसे होने चाहिए और श्रोता कैसा होना चाहिए? आप इतनी सालों से कथा कह रहे हैं तो आपका सार क्या है? मैं आपको बताउं। मैं सालों से बोल रहा हूं। मेरी दृष्टि में तीन वस्तु है। आयोजक बलवान होना चाहिए। बलवान मीन्स क्षमतावाला होना चाहिए। और व्यवस्था में जो लोग होते हैं वो शीलवान होना चाहिए। किसी का तिरस्कार न हो जाय, किसी को धक्का न दिया जाय, किसी को तिरस्कृत वाणी में व्यवहार न किया जाय। विवेक और शील होना चाहिए। मैं शांति का आदमी हूं। मेरे पास आओ तो शांत बैठो।

केवल देह का दर्शन करे वो शूद्र है। मन का दर्शन करे वो वैश्य है। आत्मा का दर्शन करे वो ब्राह्मण है और उससे आगे जो जाय; उसके उपर भी सत्य, प्रेम, करुणा का दर्शन करे वो साधु है। मैं मिलने का आदमी नहीं, सुनने का हूं। व्यवस्थापक शीलवान होना चाहिए और श्रोता दृष्टिवाले होने चाहिए। विवेकबुद्धिवालें होने चाहिए। आयोजक सामर्थ्यवान होने चाहिए। एक आदमी अंधा था। इलाज करवाया तो आंख आ गई। तो किसी ने उसको किताब दी कि पढ़ो। तो बोले, मैं पढ़ नहीं सकता। बोले, डोक्टर झूठा है, ये आंख आ गई तो पढ़ना चाहिए! साहब, डोक्टर आंख दे उससे दिखता है, पढ़ने के लिए क्लास एटेन्ड करनी पड़ती है। श्रोता क्या है? आप दिख तो रहे हो माहौल, लेकिन पढ़ नहीं पाते। बुद्धपुरुषों को पढ़ो। आयोजक धन्यवाद के पात्र है। कथा किसी का अपमान करने के लिए नहीं है। आप मेरा सन्मान करो, मुझसे सह्य नहीं है और आप किसी दूसरे का अपमान करो तो वो भी मेरे से सह्य नहीं है। मैं बार-बार कहता हूं, मुझे एक शाल भी मत देना। मेरे पास एक दुकान चलाउं इतनी शाल है! साधु-संतो को शाल मत दो, मशाल दो। कबीर की तरह चौक में खड़ा रहे। कहने का मतलब कुछ परिणाम आये। और एक मात्र गुरु ही उपाय है। और 'रामचरित मानस' स्वयं सद्गुरु है।

भगवान शिवजी ने राम के निर्गुण तत्त्व की चर्चा की है और भगवान निराकार से साकार होता है। उसके कोई कारण नहीं। कुछ कारण भी है। इश्वर कार्य-कारण सिद्धांत से पर है। फिर भी परमात्मा प्रकट क्यों हुआ उसका पहला कारण जय-विजय, इसलिए प्रभु को निराकार से नराकार होना पड़ा। दूसरा कारण सतीवृंदा। तीसरा कारण नारदशाप का बताया। चौथा कारण मनु और शतरूपा की तपस्या की फलश्रुति राम को प्रकट होना पड़ा। और राजा प्रतापभानू को ब्राह्मणों ने शाप दिया और प्रतापभानु दूसरे जनम में रावण हुआ। अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ और धर्मरुचि नामक मंत्री वो विभीषण हुआ।

रामकथा में राम के जनम के पहले रावण-जनम की कथा है। तीनों भाईयों ने बहुत कड़ी तपस्या की और दुर्गम और दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। पूरे जगत को भ्रष्टाचार में डुबो दिया! धरती अकुला उठी। गाय के रूप में पृथ्वी ऋषिमुनियों के पास रो पड़ी! ऋषिमुनियों ने कहा, चलो हम सब देवताओं के पास जाये। सब मिलकर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा की अगवानी में सबने मिलकर स्तुति की। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो, मैं रघुवंश में अवतार धारण करूंगा।' पहले पुरुषार्थ फिर प्रार्थना और प्रार्थना पूरी होने के बाद प्रतीक्षा। जीवन की साधना में पहले पुरुषार्थ, उसके बाद प्रार्थना, उसके बाद प्रतीक्षा। हम प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं! ये तो अनंत धैर्य का मारग है।

अयोध्या के वर्तमान सम्राट दशरथजी में वेद के तीनों कांड समन्वित हुए है। 'श्रीमद् भगवद्गीता' का ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का संगम है अवधपति। कौशल्या आदि रानियों का दिव्य-मधुर दांपत्य का जिक्र किया है। राम जैसा बेटा प्रकट हो हमारे संसार में इसलिए ये छोटी-सी फोर्म्यूला है। दशरथजी को रानियां प्रिय है और रानियों को अपने पति के प्रति आदर है। लेकिन दशरथजी को एक पीड़ा थी कि मझे पुत्रसुख नहीं है। मैं किससे कहूं?

गुरु गृह गये तुरत महिपाला।

आज महिपाल सहीपाल के द्वार गया। गुरु को सुख-दुःख के समिध समर्पण किये। शृंगिऋषि को बुलाकर पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया। भक्तिसहित आहुतियां डाली गई। खीर का प्रसाद लेकर यज्ञपुरुष प्रकट हुए। वशिष्ठजी के हाथ में खीर का चरु देकर कहा कि राजा को कहो, अपनी रानियों को यथाजोग बांटे। राजा ने आधा भाग प्रसाद का कौशल्याजी को दिया। पा भाग कैकेयीजी को और पा भाग के दो भाग करके कौशल्याजी और कैकेयी के हाथों से सुमित्रा को दिलवाया। तीनों रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। पूरे विश्व में सुखसमृद्धि छाने लगी। पंचांग अनुकूल हुआ। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगी। स्तुतियां होने लगी। परमात्मा प्रकट होने की बेला निकट आई। माँ के भवन में उजाला होने लगा। परमात्मा प्रकट हुए। चतुर्भुज रूप धारण किया -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

माँ ने अद्भुत रूप की झांकी की। माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु मुस्कुरा दिये। माँ ने मुंह कर लिया, 'प्रभु, आप नर के रूप में नहीं, नारायण के रूप में आये हो।' प्रभु ने चतुर्भुज से दो हाथ किया और छोटे-छोटे होते बिलकुल शिशुरूप हुए। भक्ति अपने अनुकूल ईश्वर को कर देती है। ये भक्ति का सामर्थ्य है। हरि प्रकट हो गये। महाराज को ब्रह्मानंद हुआ। उसके बाद परमानंद हुआ। ब्रह्म है कि भ्रम है ये गुरु के बिना कौन निर्णय कर सके? वशिष्ठजी आये। निर्णय हुआ। साक्षात् ब्रह्म है, ऐसा जाना तब परमानंद में डूबे महाराज। महाराज ने घोषणा की, बधाईयां गाओ, उत्सव मनाओ। पूरे विश्व को रामजनम की बधाई हो।

मेरी समझ में गुरु के तीन लक्षण उतरे हैं। पहले-पहले गुरू साधक की रुचि के अनुसार काम करता है। लेकिन जब गुरु- बुद्धपुरुष आश्रित को समझ लेता है फिर उसकी हर रुचि नहीं पूरी करेगा। और हम कहां मार खा जाते हैं कि बहुत रुचि पूरी की बुद्धपुरुष ने और फिर अंक बदला, स्टेज बदला साधक के हित में, और हमारी एकाद रुचि पूरी न की तो हम डिप्रेस हो जाते हैं! गुरु का इरादा होता है शुरू में रुचि देखना। उसके मुताबिक शिष्य पर काम करना। उसके बाद रुचि देखना बंद करता है, उसका हित देखता है। और फिर हित देखते-देखते स्टेज बदल देता है और उनका परमहित किसमें है, ये देखना शुरू कर देता है।

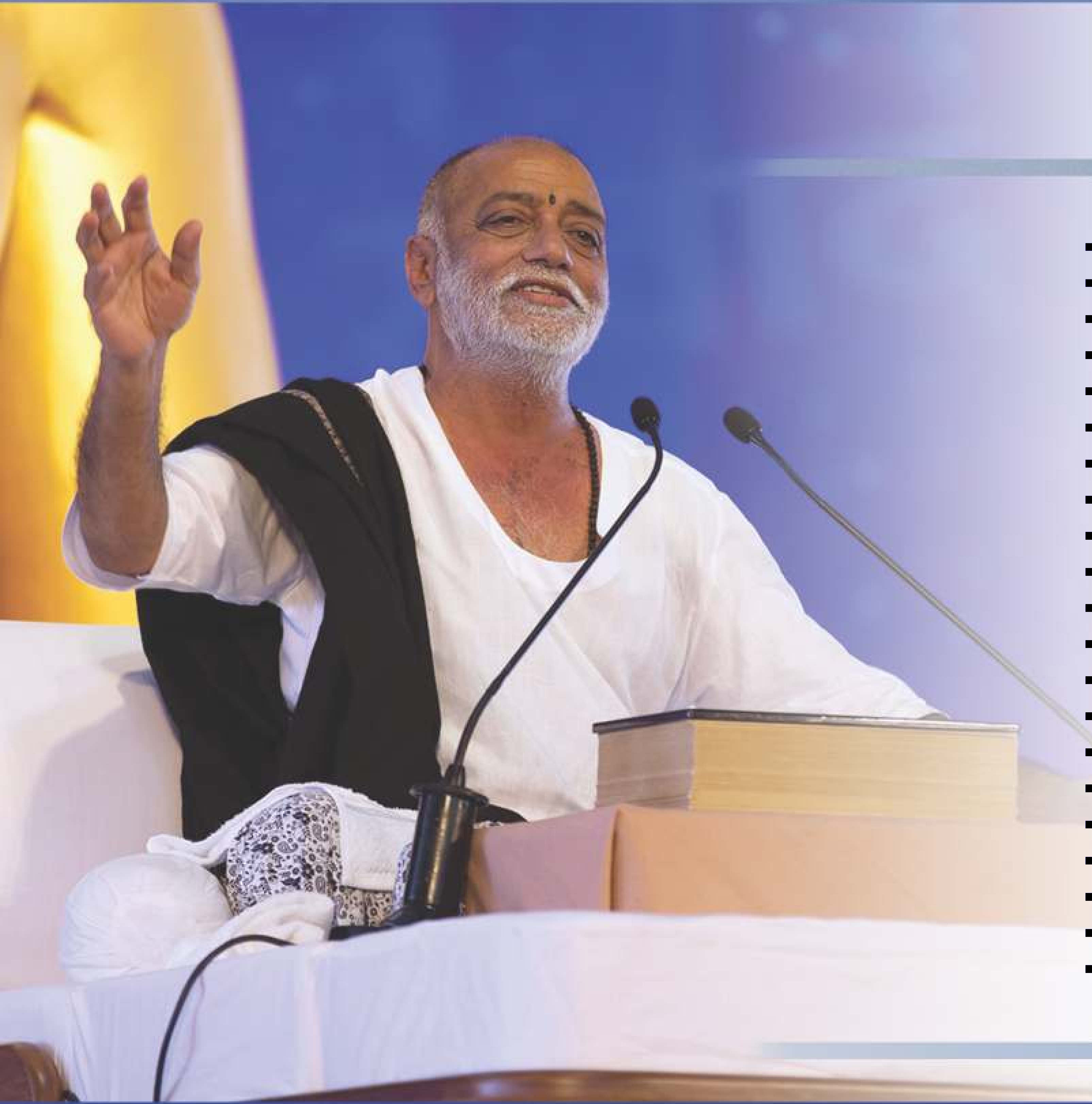

कथा-दर्शन

- कथा महादान है। भगवान की कथा से उत्तम कोई दान नहीं है।
- कथा भीड़ का विषय है ही नहीं, कथा भाव का विषय है।
- आज मनुष्यजीवन में विवेक प्रकट करने का एक मात्र सफल कोई माध्यम हो तो हरिकथा है।
- सद्ग्रंथ का नितांत कार्य है प्रत्येक की ग्रंथियों का भेदन हो, छेदन हो, निर्मूलन हो।
- हरिभजन के भोग पर कोई भी प्रवृत्ति न करो।
- भक्ति कभी बूढ़ी नहीं हो सकती। भक्ति सदैव युवान है।
- राम का संग सुला देता है, साधु का संग जगा देता है।
- ईश्वर को तोलना आसान है, साधु को तोलना मुश्किल है।
- अचानक प्रसन्नता आ जाय, तो समझना तुम्हारे बुद्धपुरुष ने तुमको याद किया है।
- गुरु सनातन होता है। गुरु कभी पुरातन नहीं होता।
- विवेक बिकता नहीं, विवेक बुद्धपुरुषों के पास बैठकर पाया जाता है।
- आप का मन जिस पल अकारण प्रसन्न होने लगे तब समझना कि आप मानसिक तपस्या कर रहे हैं।
- आध्यात्मिक मार्ग के यात्री को शिकायती चित्त को खत्म करना चाहिए।
- शिकायती चित्त अध्यात्म का स्पीड ब्रेकर है।
- आंखवाला देख सकता है और भीतर से अंत:करण का जागा आरपार उतर जाता है।
- कभी–कभी समाज का अंतिम आदमी भी तुम्हें ईश्वर का रास्ता दिखा सकता है।
- मन से बहुत सावधान रहना। मन बड़ा चालाक है।
- मुस्कुराना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।
- देह आडंबर कर सकता है, आत्मा आडंबर नहीं कर सकती।
- नृत्य कला भी है, विद्या भी है और अध्यात्म भी है।
- नृत्य अध्यात्म प्राप्ति का एक राजमार्ग बन सकता है।

मायावी पदार्थ हरिनाम से और हरिनाम कीर्तन से कांपते रहते हैं

मानस-नृत्य ॥६॥

'मानस-नृत्य', जिसकी कुछ सात्विक-तात्त्विक चर्चा प्रधान रूप में हम संवादी रूप में कर रहे हैं। जिज्ञासा आई है 'बापू, 'मानस-नृत्य'की सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा सुनके हमें भी नर्तन करने की भीतर से इच्छा होती है लेकिन कभी ये इच्छा रुक जाती है, कभी बढ़ जाती है, कारण क्या है?' ये केवल नृत्य के बारे में ही नहीं; नृत्य तो भक्ति है लेकिन ये अवस्था ज्ञान के बारे में भी मानी गई है कि इस संसार में किसीका भी ज्ञान अखंड नहीं रह सकता। कभी बढ़ा, कभी कमज़ोर हो जाता। कर्म के बारे में भी ये सिद्धांत इतना ही परिपक्व माना गया है कि हमारा कर्म भी कभी बहुत शुभ की ओर जाता है, कभी जानते हुए भी अशुभ के प्रति गति करता है। अंत:करण की प्रवृत्ति साक्षी दे रही है फ़िर भी उसको अनदेखा करके, अनसुना करके कर्म की गति भी कभी सन्मुख, विमुख होती है। कल भी शायद दिलीप ने पूछा कि बापू, कभी-कभी रस कम होता है। रस जो पहले बहुत आता था अब थोड़ा कम होता है। कभी बढ़ जाता है। कर्म, भक्ति और ज्ञान की यात्रा ये कभी तैलधारावत् नहीं चलती। ये तैलधारावत् अखंड हो जाय, जैसे भक्ति में नारदजी ने कहा भक्ति ऐसी हो कि अविच्छन्न हो-

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जो सुनि होई राम पद प्रीति सदा अबिछीन ।।

मांगा गया कि मेरी भक्ति अविच्छन्न हो। 'सूक्ष्मतरम्', ये सुतीक्ष्ण में दिखता है। सुतीक्ष्ण का प्रेम, सुतीक्ष्ण की भक्ति, सुतीक्ष्ण का नृत्य ये सूक्ष्मतरम् है। सुतीक्ष्ण का नृत्य ये कोई स्टेज प्रोग्राम नहीं है। ये दर्शकों के लिए नहीं है। और उसका नर्तन का दर्शन करने के लिए दर्शक स्वयं राम बने। दर्शक राम है फ़िर भी उसको पता नहीं है कि मैं कौन हूं? कहां जा रहा हूं? क्या हूं?

एक श्रोता ने पूछा था कि ये सुतीक्ष्ण कभी आगे जाता है, कभी पीछे जाता है, ये क्या है? ये भक्ति की गति ही ऐसी है। लेकिन कीर्तनभक्ति में आगे-पीछे जाना आवश्यक है। ये महाराष्ट्र की भक्ति जो है संकीर्तन, इसमें आप देखियेगा, 'विठ्ठल, विठ्ठल' करके लोग आगे जाते, पीछे जाते। खंभे की तरह लोग स्थिर नहीं हो सकते। आप 'नर्तन' शब्द लिखो तो दोनों बाजु से नर्तन पढ़ सकोगे। 'कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।' ये भक्ति की गति है लेकिन प्रश्न ये है कि रस क्यों कम होता है? हम संसारी है इसलिए इतना बड़ा प्रेमरस पाने के बाद भी कभी-कभी हमारे जीवन में और रस की प्रधानता होने लगती है। कभी प्रतिष्ठा का रस प्राप्त करने की चाह; हमारी रुचि कभी-कभी ओर रस में चली जाती है। और मन बड़ा फुसलानेवाला है। मन से बहुत सावधान रहना। मन बड़ा चालाक है। जीव थोड़ा मन के बारे में सावधान रहे। मन परमात्मा की विभूति है इसलिए 'मन से बड़ा न कोई।' फिलम की पंक्ति है-

तोरा मन दर्पण कहलाये,
मन ही देवता, मन ही ईश्वर,
मन से बड़ा न कोई।

वहां तक शायारों ने उद्घोषणा की है। शास्त्रों में पांच कारण बताये हैं कि क्यों हमारा मन कभी शुभ गति की सोचता है? कभी विपरीत गति की सोचता है? क्यों हमारी ज्ञानधारा अखंड नहीं रहती? क्यों विषय का वायु हमारे ज्ञानदीप को बार-बार बुझा देता है? क्यों ये विषय-देवता हमारे ईन्द्रियों के द्वार खोल देता है और विषयज्ञान से हमारा बोध क्यों बुझा-बुझा सा होने लगता है?

मेरे देश के ऋषिओं ने पांच कारण बतायें। बहुत-से श्रोताओं की ये अनुभूति है। कई लोग कथा में पागल थे! लेकिन ऐसे श्रोता भी मेरे पास आकर रोने लगते हैं कि बापू, पहले जैसी मस्ती चली गई! क्या कारण है? मैं तो इतना ही कहता हूं, हरिभजन के भोग पर कोई भी प्रवृत्ति न करो। सब प्रवृत्ति करो लेकिन हरिभजन का भोग न लिया जाय। बाप, ज्ञान अखंड नहीं रहता। उसका पहला अवरोधक परिबळ बताया गया है उसका नाम है लय; लय होना। कभी-कभी होने लगता है कि कितनी कथा सुने? कब तक सुने? या तो कोई दूसरा आप को ये कहेंगे कि कब तक सुनोगे? ये सब प्रश्न आयेंगे। कब तक ये वाणीविलास में डूबोगे? और आदमी लय में चला जाता है। आदमी थोड़ा ज़ीरो होने लगता है।

दूसरा रसभंग कर्मगति विपरीत हो। ज्ञान अखंड न हो उसका दूसरा कारण विक्षेप। आप पूजा करने बैठो और फोन की घंटी बजी। पूजा गौण करके हम फोन ले लेते हैं! हम संसारी आदमी, कोई आवश्यक हो क्या पता? आलोचना के स्तर पर नहीं लेकिन उसको विक्षेप तो समझो ही समझो। आप बिलकुल प्रभु के प्रेम में मस्त होने की तैयारी में होंगे तभी कोई ऐसा आयेगा जिसको आप नकार भी नहीं सकते! दिल से आवकार भी नहीं सकते और आपको अपनी मस्ती से बाहर निकलना पड़ेगा। ये विक्षेप है।

सुकरात ने ये फोर्म्यूला बताई, ट्रिपल फिल्टर टेस्ट। सुकरात ने अपने पास आये हुए एक आदमी के पास ये फोर्म्यूला पेश की ट्रिपल फिल्टर टेस्ट। सुकरात पास आदमी आया। बोले, आप के बारे में वो भाई ऐसा कह रहा है। सुकरात ने कहा, आप पांच मिनट रुको। मैं एक कार्य में हूं फ़िर आप के पास आकर चर्चा करेंगे। सुकरात पांच-छ मिनट बाद आता है। दोनों बैठते हैं। बताओ, क्या बात है? बोले, एक आदमी आप के बारे में ऐसा-ऐसा कह रहा था। पहले टेस्ट करे। निर्णय तीसरे के बाद करेंगे कि मेरे बारे में वो आदमी ऐसा कह रहा था वो सत्य है? तू पक्का है? उसने कहा, मैंने तो सुना है। पहले फिल्टर टेस्ट में तू फेईल हो गया। भक्ति करते-करते रस गवां देते हैं, क्योंकि हमारे रस ऐसी बातों में बढ़ता जा रहा है! सुकरात जैसा जागा हुआ आदमी एक ही सवाल में गरदन पकड़ लेगा लेकिन हमारे सामने तो इतनी चालाक दुनिया है कि हमारे शब्द में बल नहीं है, सुकरात के शब्द में बल है। इसलिए पहले ही वाक्य में पराजित हो गया! अब दूसरा फिल्टर टेस्ट कि सत्य क्या है ये मुझे ही पता नहीं तो अच्छा बोल रहा था कि बुरा ये कैसे कहूं? दूसरा टेस्ट फेईल! अब तीसरा सवाल, जो वो बोल रहा था वो तेरे लिए या मेरे लिए उनकी कोई उपयोगिता है? गुरु कंठी डालता नहीं, कंठ पकड़ लेता है। उसने कहा, नहीं तो! तो छोड़, तीनों टेस्ट बेकार!

मेरे भाई-बहन, रस कम हो, कोई तुम्हारे पास आकर विक्षेप करता है। पहले टेस्ट करो कि ये सत्य है? दूसरा ये कि ये सही है यानी अच्छा है या बुरा है। अब महत्त्व का तीसरा टेस्ट हमारे लिए उपयोगिता है। साधक को यदि रस को तैलधारावत् रखना है, ज्ञान के दीप को वैसे ही अखंड जलते रखना है, और कर्म की गति को सम्यक् रखना है तो विक्षेप आये तब ट्रिपल फिल्टर टेस्ट करो। तो बार-बार विक्षेप का आना हमारी गति का

बाधक है। विनोबाजी का एक सूत्र है, सहचिंतन होना चाहिए। लेकिन सहचिंतन ऐसा होना चाहिए जो नितनूतन हो। आज का युवान रोज नया चाहता है। और परमात्मा रोज नया है। भक्ति रोज नई है। सहचिंतन करो।

शुक क्यों प्रिय है? शुक के मुख से निकले सूत्र नितनूतन है। भुशुंडि क्यों प्रिय है? क्यों भुशुंडि नया लगता है, शुकदेव नया लगता है? काले कौओ का रंग कभी बदला नहीं और हरे शुक का रंग भी कभी बदला नहीं। जरूर भुशुंडि काले में गये और श्वेत हो गये वो तो सांकेतिक है। वो तो अवस्था भेद की चर्चा है। इसलिए शुकदेवजी नितनूतन लगते हैं क्योंकि हराभरा है और कागभुशुंडि इसलिए नितनूतन लगते हैं कि उसकी काली चमडी में कोई दाग नहीं लगा। दोनों में बहुत समन्वय है। क्या शुक, क्या काग, दोनों के स्थान का एक नाम शास्त्रकारों ने प्रसिद्ध किया। भुशुंडि रहे ये भुशुंडिताल और शुक रहे वो शुकताल। और दोनों उत्तराखंड की यात्रा की गति दिखाते हैं। शुकताल में भागीरथी गंगा बहती है, तो भुशुंडिताल में रामकथा की गंगा बहती है। एक अर्थ में दोनों ने रंग नहीं बदले। शुक श्वेत हो गये। भुशुंडि सरोवर गये, हंस बन गये। परमहंस बन गये हैं ओलरेडी।

किसीने पूछा है, 'हम चंदन, भस्म, कंकु क्यों लगाते हैं? ईश्वरप्राप्ति करने के लिए चंदन घिसना आवश्यक है?

तुलसीदास चंदन घिसे तिलक करे रघुबीर।

चंदन घिसे मानी एक ही प्रक्रिया के रूप में नहीं, चंदन मानी जो तुम्हें कटुता दे उसको भी मीठास दो। जो तुम्हारे पर कुड़ा फेंके उसको भी गुलाब दो। जैसे चंदन की लकड़ी में कुल्हाड़े ने अपनी धार डाली ही, पहली प्रतिक्रिया चंदन की है। चंदन ने खुश्बू दे दी। इसलिए चंदन देवताओं के सिर पर चढ़ा है और कुल्हाड़े को-परशु को अग्नि में डालकर तपा करके लुहार घण से पिटते हैं। ये उनके मुख पर दंड है। चंदन की प्रतिष्ठा है नखशिख। नखशिख की महिमा है कि हमारा जीवन नखशिख शीतल रहे। हमारा जीवन दूसरों को कटुता न दे, खुश्बू दे। और कोई चीज भस्म हो जाती है तो सफेद हो जाती है। रंग श्वेत हो जाता है। ये संन्यासी लोग गेरूएं कपड़ें पहनते हैं वो अग्नि का प्रतीक है। संन्यासी साधु को चौबीस घंटो अग्नि में रहना पड़ता हैं। लोकमान्यता अग्नि है। प्रतिष्ठा अग्नि है। ये सब अग्नि के अंदर उसको जीना पड़ता है। और बैरागी संत जो है वो सफेद कपड़ें पहनते हैं। क्या मतलब? एक महात्मा है जो आग में जीते है लेकिन उसी संत की आग उसको सब कर्म खत्म कर दे, प्रारब्ध खत्म कर दे, क्रियमाण कर्म खत्म कर दे, सब भस्मीभूत कर दे, तब भस्म हो जाती है और भस्म श्वेत हो जाती है। श्वेत भस्म वैरागी का प्रतीक है।

तो, शुक श्वेत हो गये। मेरे कहने का मतलब है, अपने रंग में रहे। दोनों अपने रंग में रहे। दोनों के पास पांख है। दोनों के पास पैर भी है। शुक के पास चोंच है, भुशुंडि के पास चोंच है। जुवार के दाने एक थाली में रखकर इन्सान को कहो कि चुगो तो मुश्किल होगा। एक-एक नहीं चुग पाओगे। चोंचवाले एक-एक चुगता है। धीरे-धीरे एक-एक सूत्र, एक-एक मंत्र, एक-एक हरिनाम की माला सजाता है। चोंचवाला सही लक्ष्य पर चोंच रखता है। सही मुद्दे पर उसके चोंच का निशान होता है। इन परमतत्त्वों का रंग एक ही रहा। हमारा रंग चड़-उतर होता है क्योंकि हमारे जीवन में विक्षेप आता है।

तीसरा जो अवरोधक बल बताया गया शास्त्रों में उसका नाम है कषाय। अमुक प्रकार की विकृतियां आने लगती है। आप श्रवण करो तो शायद नींद आ जाय लेकिन नृत्य देखो तो नींद नहीं आती। अपवाद हो सकते हैं! और इससे भी ज्यादा खतरा है स्मरण में। कई लोग कहते हैं, 'बापू, 'हनुमानचालीसा' करने बैठते हैं, स्मरण करते ही नींद आ जाती है!' उसमें खतरा है। ये सब विकृतियां हैं। हम सब की यही दशा है। लोभ का विचार आया, क्रोध आ गया, ये सब कषाय है। चौथा

विघ्न है प्रतिपथ। ये सब शास्त्रीय शब्द है। श्रावण महिना है तो घर में बैठकर मौन रखूं कि हरिद्वार जाउं? ये जो डामाडौल स्थिति है उसको प्रतिपथ कहते हैं। तीर्थ में जाकर जप करूं, अनुष्ठान करूं? फ़िर भी एक दूसरा प्रश्न उठेगा, अयोध्या जाउं कि ऋषिकेश जांउं? नाथद्वारा जाउं कि जगन्नाथ जाउं? द्वारिका जाउं कि केदारनाथ जाउं? ये जो डामाडौलता है उसको प्रतिपथ कहते हैं। ये सब हमारी धारा को बार-बार चढ़ाव-उतार में डालती है। और पांचवां और आख़िर है स्वादानुभूति। वहां लिखा है स्वादानुभूति हमारे रस को तोड़ती है। स्वाद के प्रति रुचि ये हमारा विघ्न है। दूसरा, अच्छे दृश्य देखना वो भी विक्षेप है। और तीसरा, अच्छे आभूषण, वस्त्रालंकार उसमें स्वाद ये भी रस कम करने में विक्षेप है। अब यहां मैं ये तीनों में सहमत नहीं हो पाता।

तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।।

गोस्वामीजी वाल्मीकि के मुख से बुलवाते हैं कि हे राम, जो आप को निवेदन करके भोजन करता है, भोजन का स्वाद लेता है उसके हृदय में आप निवास करो। अब शास्त्र का खंडन करूं कि इस बात का मंडन करूं कि मध्यम मार्ग अपनाउं? क्या करूं? आज जो हमारे सामने भोजन आया है, ठाकोरजी को अर्पण करके पूरा स्वाद लो, लेकिन ऐसा कल भी मिले ऐसी कामना छोड़ दो। आज परमात्मा ने मौका दिया है घर में। आभूषण है, अलंकार है, अच्छे वस्त्र हैं, सात्त्विकता बनी रहे। वेश में सात्त्विकता हो। धर्मगुरु का वेश भी सात्त्विक और सादगी से भरा हो। राजनेताओं का वेश भी सात्त्विक और सादगी से भरा होना चाहिए, वर्ना आलोचना होने में देर नहीं लगती।

'विदुरनीति' में लिखा है, तीन लोगों को राज मत सोंपो। संचालन नहीं कर पायेगा। विदुर ने कहा, मातृशरीर राज करे वो ठीक नहीं। मैं इसका अर्थ ये समझता हूं कि मातृशरीर कोमल होता है। मातृशरीर करूणा से भरा होता है। राजा को कठोर भी होना चाहिए और मातृशरीर इतनी कठोर नहीं बन पाती। और राजा में तो साम, दाम, दंड, भेद होना चाहिए। इसी अर्थ में शायद कहा होगा। दूसरा, नादान बच्चों को राज देना नहीं चाहिए। बोले तो फनी लगता है। और न बहुत बूढ़ा होना चाहिए। बीचवाला पीढ़ होना चाहिए जो अपने स्थान का गौरव बनाये रखे। और तीसरा सूत्र विदुर ने कहा, पागलों को राज्य सत्ता नहीं देना चाहिए। स्वस्थ लोगों को राजसत्ता देनी चाहिए। मीरां के नाम एक भजन है गुजराती में-

मुज अबळाने मोटी मिरांत, बाई!
शामळो घरेणुं मारे साचुं रे।
पेटी घडावुं पुरुषोत्तम केरी, त्रिकमजीनुं ताळुं रे।
कूंची करावुं करुणानंदनी, तेमां घरेणुं मोटुं घालुं रे।

तो बाप, आभूषण पहनना लेकिन तुलसी कहते हैं, ठाकुर को निवेदित करके पहनना। अलंकार दीक्षित हो जायेंगे। अच्छे मंजर देखकर स्वाद मत लेना, शास्त्र कहता है। तो क्या अच्छा दृश्य देखे ना? अच्छा नाटक हो जो प्रेरणादायी हो तो ऐसा नाटक देखना मैं मना नहीं कर सकता। सम्यक् म्युज़िक हो और अभद्रता न हो, जो हमें कुछ सात्त्विकता की ओर लीये चले ऐसी कोई चलचित्र हो तो भी मेरी व्यासपीठ को कोई तकलीफ़ नहीं है। मैं मना नहीं करता युवानों को कि फिलम न देखो। जरूर स्वाद लो लेकिन बुद्धि बिगड़े ऐसा काम न करो। जिससे चरित्र विकृत हो ऐसे चलचित्र मत देखना लेकिन जिससे राम जैसा होने को तैयार हो तो ऐसे चित्र देखना भी बुरा नहीं है।

ओशो का एक वक्तव्य है कि मैं किसीको पुण्यात्मा बनाने के लिए यहां नहीं आया हूं। मेरा मिशन किसीको धर्मात्मा बनाने का नहीं है। मैं किसीको भक्त बनाने के लिए यहां नहीं आया हूं। मुझे अच्छा लगा। वो कहते हैं, मैं यहां एक मानवी जो है, जैसा है वैसा बना रहे। कुछ बनने की चेष्टा की ही घाटे का सोदा! भगत हुआ नहीं जाता, भक्ति अंदर से वरण करती है। और

बनेंगे तो कितने समय बने रहेंगे? बने तो गये! परमात्मा जो सर्जक है, आख़िरी क्रिएटर है, आख़िरी जो रचयिता है परमात्मा उसने हमने ओलरेडी माँ के गर्भ में कुछ बनाकर भेजा है। अब दूसरे क्या बनना है? तो जो समय मिला है उसमें आनंद कर ले।

किसीने मुझे पूछा था, 'बापू, आप को राम, कृष्ण, हनुमान, शिव किसमें रस है?' मैंने सटीक जवाब दिया, मुझे लाईफ में रस है, जिंदगी में रस है। लाईफ है तो ओलरेडी राम है। जिंदगी है, रस है तो ओलरेडी कृष्ण है। 'बुद्धपुरुष किसको कहते हैं?' जिसका वेश सादा हो। जिसकी वृत्ति सरल हो। जिसका वक्तव्य सादा हो। वर्तन भी भाये। इसलिए 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी कहते हैं-

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो ।।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुःख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।

देह के कारण जितनी ईर्द-गिर्द चिंता है मुझे छू रही है उसको छोड़कर सुख-दुःख जो आयेगा उसको सम बुद्धि से मैं सह लूंगा। गुरुकृपा से आ जाय तो सरल भी बहुत है और न आये तो जटिल भी बहुत है! जिगर मुरादाबादी हैं-

न गरज किसी से न वास्ता,
मुझे काम अपने ही काम से।
तेरे ज़िक्र से तेरी फ़िक्र से
तेरी याद से तेरे नाम से।

'रामचरित मानस' मानव बनाने की फोर्म्यूला है, इसलिए उसको 'मानस' कहते हैं। एक प्रक्रिया सफल हुई। पुष्पक विमान में सब बंदर बैठे थे तब तक बंदर थे। अयोध्या की भूमि में उतरे तो 'धरे मनोहर मनुज सरीरा।' मौलिक जीवन जीओ। जो माया पूरे जगत को नृत्य कराती है उसी माया को कौशल्या माँ ने किस रूप में देखा?

देखी माया सब बिधि गाढ़ी ।

माँ कौशल्या ने देखा, परमात्मा के विराट रूप के पास माया खड़ी है। वो कैसे खड़ी है?

अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।

अतिशय भयभीत होकर, हाथ जोड़कर ठाकुर के सामने माया खड़ी है क्योंकि माया बेचारी है।

देखा जीव नचावइ जाही ।
देखी भगति जो छोरइ ताही ।।

जो मायारूपी नर्तकी इस जीव को नचाती रहती है, ऐसे सब जीव देखे। जो माया के कारण सब भ्रमित हैं, नाचते हैं। और तुरंत माँ ने देखा, माया खुद कांप रही है और जीव को नचा रही है। देखा तो वहां मधुरी भगति खड़ी है, जो कांपते हुए जो भयभीत बंधन में हैं इस जीव को मुक्त करनेवाला कीर्तन भी खड़ा है और नर्तकी भी खड़ी है, जिसकी चर्चा हम 'मानस-नृत्य'के संदर्भ में करते थे।

तो मेरे भाई-बहन, माया डरती है कीर्तन से। आदमी भक्ति के कारण नाचता है तब माया बिचारी बन जाती है। मायावी सब पदार्थ कांपते रहते हैं हरिनाम से, हरिनाम कीर्तन से, हरिनाम सुमिरन से ये पक्की बात है। भगवान की कथा शुरू होती है तो माया को अंदर आने की मना हो जाती है, माया बाहर रहती है। लेकिन कथा, कथा होनी चाहिए। केवल मनोरंजन हो तो माया भी नर्तन करने के लिए आ जाती है। कथा, कथा हो जिसमें वक्ता और श्रोता की आत्मा नृत्य करती हो। इसलिए महाराष्ट्र के संतों ने बहुत कीर्तन किया। ओशो ने भी कीर्तन करवाया। नाचे, लोगों को नचाया।

तुलसीदासजी ने परमात्मा के नाम को भी अमृत कहा, परमात्मा की कथा को भी अमृत कहा। और सब जगह तुलसीदासजी ने मंथन की प्रक्रिया की है। समुद्र का मंथन होता है तो चौदह रत्न निकलते हैं। परमात्मा समुद्र है और समुद्र को मथने की योजना बनी। लेकिन यहां ब्रह्मरूपी समुद्र का मंथन केवल देवता ही करते हैं; असुर को जोड़ा नहीं तुलसी ने।

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।।

ज्ञान; मंदराचल तो रखना पड़ेगा, मथनेवाला। साधु लोग ही, देवता ही उसका मंथन करे। सूरवाले लोग मंथन करेगा, जिसके पास सूर है। कथारूपी अमृत निकलता है मंथन करने से और जिसमें भक्ति का माधुर्य है। लेकिन भगवान की कथा को मैं नव दिन का सागरमंथन समझता हूं। और भाग्यशाली को ये सागर मंथन से चौदह रत्न मिल जाता है।

एक भाई का सवाल है, 'समुद्र का मंथन हुआ तो चौदह रत्न निकले वो क्या?' हम जब कथा में कीर्तन करते हैं तो मंथन शुरू होता है। मंथन के लिए घूमना चाहिए। कीर्तन हम को घूमाते हैं। संकीर्तन भक्ति एक अर्थ में मथानी है। श्री, मणि, रंभा, वारुणी, अमीअ, शंख, गजराज, कल्पद्रुम, शशि, धेनु, धनुष, धन्वंतरि, विष, उच्चै:श्रवा घोड़ा ये चौदह रत्न है। श्री भगवान की कथा में जब हम नृत्य करते हैं तो उनमें कौन-सी श्री प्रगट होती है? श्री का एक अर्थ होता है समृद्धि। एक आदर वाचकता जैसे श्रीमती, श्रीमान, एक अर्थ है वैभव-विलास। श्री मानी तेजोमंडल, तेजोवलय। श्री के बहुत अर्थ है। और जब हम नृत्य करते-करते गाते हैं 'मानस'को तब एक विशिष्ट प्रकार की श्री प्रगट होती है। एक कथा का विलास, कथा की महिमा प्रगट होती है। कथा का एक प्रकार का आलम प्रगट होता है। परमात्मा के नाम का वैभव कथा में प्रगट हो ही जाता है।

मणि; भगवान की कथा में जब नृत्य के साथ संकीर्तन होता है तब 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड'में जिसको भक्तिमणि, चिंतामणि कहा है तुलसीजी ने, ये मणि प्रगट होता है। तीसरा रत्न रंभा। रंभा एक अप्सरा का नाम है। अप्सरा उसको कहते हैं, जो पृथ्वी पर नहीं रहती। अप्सरा का अर्थ है कुछ जिसमें विशेषता है। और इस विशेषता का जिसने दूसरों की आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डालने का प्रयोग किया है उसको कहते हैं अप्सरा। लेकिन कथा में जब नृत्य-मंथन होता है तब रंभा का अर्थ 'रंभ' शब्द एक आवाज़ का नाम है। कथा में एक ऐसी पुकार उठती है जैसे गौ बछड़े के लिए पुकारती है। परमात्मा के प्राप्ति की पीड़ा की एक मधुर आह का नाम है रंभ और रंभा है बहुवचन। कीर्तनभक्ति, नृत्यभक्ति, हृदय की भक्ति में ये सब रत्न निकलते हैं। वारुणी; वारुणी मानी शराब। समुद्र मंथन हुआ तो मदिरा भी निकली।

जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ।

जब स्नेह प्रगट होने लगे, छलक जाय आंखो से। स्नेह यही वारुणी प्रगट होती है कथा में नृत्य भक्ति से। ये जो रास का पूर्व काल जो है वो स्नेह की सुरा प्रगट होने लगी थी 'भागवतजी' में। अमीअ; अमृत, नामामृत। विठ्ठल क्या है? नामामृत। पांडुरंग क्या है? नामामृत। रुकमाई क्या है? नामामृत है। परमात्मा के नाम का एक अमृत उछलता है नृत्य भक्ति में।

शंख; शंख निकला जिसको पांचजन्य शंख कहते हैं। महाराष्ट्र में जो संकीर्तन होता है तो सुंदर कंठ से सुंदर राग से सुकंठ से गाया जाता है और कंठ को उपमा मिलती है शंख की। गजराज; गजराज मानी हाथी। हाथी का मस्तिष्क विवेक का मस्तिष्क माना गया है। कीर्तन ऐसा न हो जो हमें विवेक चुका दे। सही कथा तो यही है कि विवेक का रत्न प्रगट हो। विवेक एक रत्न है जो कृष्ण-कीर्तन से सुलभ है। कल्पद्रुम; भगवान का नाम कल्पतरु है। जब हम उनका कोई भी नाम से लेकर संकीर्तन भक्ति में उतरते हैं तो वहां साक्षात् कल्पतरु की छांव में हम है। कल्पतरु का अर्थ है जो कामना करो वो कामना पूरी हो। सच्चा कल्पतरु तो वो है कि जिसके नीचे बैठने के बाद कोई कामना ही उठे ना।

शशि, चंद्र; चंद्र की उत्पत्ति समुद्र से है। चंद्र का अर्थ है शीतल प्रकाश। कीर्तन से जो चंद्र निकलता है उसमें कोई कलंक नहीं है। कृष्ण नाम का कीर्तन करे तब ऐसी शीतल प्रकाश निकले; कलंकमुक्त चांदनी हम को

प्राप्त होती है। धेनु; कामदुर्गा गाय। ये रामकथा ही स्वयं कामदुर्गा है। धनु; कहते हैं सारंग निकला समुद्र से। भगवान की कथा में हम जब मंथन करते हैं तब हमारे जीवन में एक विशेष समझ निकलने लगती है। धन्वंतरि; धन्वंतरि वैदों का नाम है। तुलसी कहते हैं, भगवान की कथा वैद है। विष, ज़हर; कथा का मंथन होता है उसमें ज़हर भी निकलता है। कौन-सा ज़हर? जो कथा सुनते हैं, कथा से प्रतिष्ठा भी पाते हैं और फ़िर भी कथा की आलोचना करते हैं, वो ज़हर! उचै:श्रवा; कान खड़ा करके भगवान का कीर्तन सुनना ये उचै:श्रवा है। भगवान की कथा बिलकुल कान को सावधान करके जो सुनते हैं वो रामकथा का रत्न है।

बाप, भगवान राम कौशल्या माँ के यहां प्रकट हुए वैसे सुमित्राजी ने दो पुत्रों को जनम दिये। कैकेयी को एक पुत्र प्राप्त हुआ। अयोध्या में एक महिने तक रामजनम का उत्सव रहा। आदमी परमानंद में डूबता है तो पता ही नहीं लगता कि समय कैसे बीत जाय! सुख का समय कटे नहीं कटता। चारों भाईओं का नामकरण संस्कार का समय हुआ। कौशल्यानंदन को देखकर वशिष्ठजी बोले, 'सुंदर रूप, श्याम वर्ण, जो आनंद का समुद्र है इस बालक का नाम मैं राम रखता हूं। कैकेयीपुत्र का नाम, विश्व का भरण-पोषण करेगा इसलिए इसका नाम भरत रखता हूं। ये सब को भरेगा।' सुमित्रा के दो पुत्र, जिसके नाम से शत्रुता का नाश होगा, ऐसे पुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा और परमात्मा के नाम का आश्रय जो करेगा वो लक्ष्मण की तरह सब का आधार बनेगा।

चारों भाई कुमार अवस्था में आये। यज्ञोपवित संस्कार हुआ। उसके बाद चारों भाई गुरु के आश्रम में विद्या प्राप्त करने के लिए जाते हैं। अल्प काल में सब विद्या प्राप्त करते हैं। उसके बाद विश्वामित्र अतिथि बनकर दशरथजी के द्वार आते हैं। दशरथजी ने स्वागत किया। विश्वामित्र कहते हैं, 'मुझे असुर लोग सताते हैं। मैं आप का धन आदि मांगने नहीं आया। मुझे आप का पुत्र दे दो। मेरा अनुष्ठान पूरा करे।' 'मैं राम को नहीं दूंगा।' वशिष्ठजी ने दरमियानगीरी की, 'राजन्, राम विश्व का है इसलिए विश्वामित्र को दे दो।' और गुरुआज्ञा सुनकर दशरथजी राम-लक्ष्मण को सोंप देते हैं। राम-लक्ष्मण माता की आज्ञा लेकर विश्वामित्र के संग जाते हैं। रास्ते में ताड़का मिली। ताड़का को निर्वाण दिया प्रभु ने एक ही बाण से। यज्ञरक्षा की। सुबाहु को मार दिया। मारीच को सतजोजन फेंक दिया। कुछ दिन विश्वामित्र के आश्रम मे रहे। उसके बाद जनकपुर जाने के लिए प्रसन्नता से कदम उठाये। धनुषयज्ञ के लिए मुनिसंग राम-लक्ष्मण पदयात्रा करते हैं। रास्ते में गौतम आश्रम आया। चरणधूलि से अहल्या का उद्धार होता है। वो समाज में पुन: स्थापित होती है। भगवान गंगास्नान करके जनकपुर पहुंचे। जनकराज ने स्वागत किया। और सुंदर-भवन में विश्वामित्र के संग राम-लक्ष्मण को ठहराया। दोपहर का सब ने भोजन किया।

माया डरती है कीर्तन से। आदमी भक्ति के कारण नाचता है तब माया बिचारी बन जाती है। मायावी सब पदार्थ कांपते रहते हैं हरिनाम से, हरिनाम कीर्तन से, हरिनाम सुमिरन से ये पक्की बात है। भगवान की कथा शुरू होती है तो माया को अंदर आने की मना हो जाती है, माया बाहर रहती है। लेकिन कथा, कथा होनी चाहिए। केवल मनोरंजन हो तो माया भी नर्तन करने के लिए आ जाती है। कथा, कथा हो जिसमें वक्ता और श्रोता की आत्मा नृत्य करती हो। इसलिए महाराष्ट्र के संतों ने बहुत कीर्तन किया। ओशो ने भी कीर्तन करवाया। नाचे, लोगों को नचाया।

संत का नृत्य व्यक्तिगत नहीं होता, व्यापक होता है

मानस-नृत्य ॥७॥

'मानस-नृत्य', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है। भूमिति का नियम है, केन्द्र आप पकड़े रखे तो इस पर वर्तुल आप कितने ही करो, केन्द्र का स्वभाव है वर्तुल को निर्मित करता है और जब तक केन्द्र मिटता नहीं तब तक वर्तुलों का समापन नहीं। जनम-जनम का चक्कर क्यों चलता है? जीव का जनम-जनम का नृत्य क्यों चलता रहे? चलता है माया के द्वारा प्रेरित। भगवान श्रीकृष्ण के रास में कहा गया कि पहला वर्तुल था उसमें कुछ ख़ास गोपीजन थे। दूसरा वर्तुल था उसमें कभी नारद गोपी बनके आते थे। शिवजी आते थे कभी। कोई ऐसी चेतना आती थी गोपीरूप। लेकिन ये रास तभी चलता था जब तक केन्द्र में राधा-कृष्ण रहे। तो केन्द्र को मिटाना कि केन्द्र को नष्ट करो; आध्यात्मिक भूमि पर उसकी व्याख्या की जाय। मैं हर कथा में कहता हूं कि ये कथा का ये केन्द्रबिंदु है।

भक्ति में केन्द्र को पकड़े रखना। ज्ञान और योग में केन्द्र को मिटाना होगा। इतना ही फ़र्क है। और तत्त्वत: देखें तो उपर से लाख कोशिश करे मिटाने की वर्तुल को, लेकिन जब तक केन्द्र है, नये-नये वर्तुल उठते रहते हैं। हम लाख कहे कि काम के वर्तुल ख़त्म हो जाय; लोभ के वर्तुल ख़त्म हो जाय; मोह, मत्सर, मद आदि वलयों का नाश हो जाय लेकिन जब तक केन्द्र बना रहे तब तक नहीं होगा। आप ने कभी दीर्घ दृष्टि अथवा सूक्ष्म दृष्टि से सोचा है कि कोई आदमी आजीवन ब्रह्मचारी है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, शास्त्रीय शब्द का प्रयोग करूं तो 'कटिमेखला' ब्रह्मचारी है जैसे कि हनुमानजी। सतजुग में नारद बालब्रह्मचारी, नारद सतजुग के ब्रह्मचारी, त्रेतायुग के ब्रह्मचारी श्री हनुमानजी। द्वापर के ब्रह्मचारी पितामह भीष्म। कलियुग में ख़बर नहीं! हनुमानजी तो है ही। माँ जानकी ने कहा है-

अजर अमर गुननिधि सुत होहू ।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।

कहते हैं कि ब्रह्मचारी प्रजोत्पत्ति नहीं करता क्योंकि ये भोग में नहीं जाता, विषयों में नहीं जाता। उसकी उर्जा का सदैव ऊर्ध्वगमन होता है। कभी ओशो ने भी कहा है, उसकी उर्जा अधोगामी नहीं होती है, ऊर्ध्वगामी होती है। लेकिन आप सूक्ष्म दृष्टि से सोचो कि मूल उर्जा के द्वारा प्रजोत्पत्ति होती है वो ब्रह्मचारी से नहीं हो पाती लेकिन स्वेद से जीव प्रगट होता है उसका क्या करोगे? हमारे पसीने से भी प्रजोत्पत्ति होती है। छोटे-छोटे जंतु पैदा होते हैं। स्वेद, प्रस्वेद, क्योंकि केन्द्र सलामत है। इसलिए 'सुन्दरकांड' में तुलसीजी की मांग है 'कामादिदोषरहितं।' मेरे केन्द्र को मिटा दो। फ़िर मेरा रास अद्‌भुत होगा। मेरा रास कामनारहित हो। मेरा रास गुणरहित हो। मेरा रास अविच्छन्न हो। मेरा नृत्य प्रतिपल वर्धमान हो; सूक्ष्मरूप हो, अनुभवरूप हो। तो, भक्ति में केन्द्र बचाया जाता है और ये सब वर्तुल काम, क्रोध, लोभ, मोह उसको रास में परिवर्तित किया जाता है। यहां से लेकर यहां बोना है। इसलिए मेरी व्यासपीठ कहती रहती है कि 'मानस-नृत्य' एक केन्द्र है। उसमें दो पंक्ति जो मूल है उस पर थोड़ा विचार किया जाय।

नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।।

सुतीक्ष्ण और अप्सरा; तुलसी 'अपछरा' कहते हैं। तुलसी बिलकुल लोकबोली में जा रहे हैं। संस्कृत के बड़े विद्वान थे तुलसी। चाहते तो बहुत बड़ा संस्कृत ग्रंथ रच सकते थे लेकिन बिलकुल लोकबोली में भाषाबद्ध किया। जैसे बुद्ध, महावीर, मागधी-पाली भाषा में उतर आये। बिलकुल लोकबोली में। ओशो कहते थे कि मैं अंग्रेजी सुनूं तो आंखें खोलकर सुनता हूं और संस्कृत सुनूं तो आंखें बंद करके सुनता हूं। ओशो का निवेदन है कि संस्कृत अमृत है। क्योंकि मूल तत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। मैं संस्कृत नाद को, ध्वनि को, रव को, नादब्रह्म को आत्मसात् करता हूं। नमन, ओशो! ये आदमी कुछ भी कर सकता था।

गुरु के घर की गम कौन जाने? दादा का एक प्रसंग। उस समय मैं 'रामायण' पढ़ता था और नाई लोग दादा के पैर दबाते थे। मैं भी रात को पैर दबाने जाता था। और ये मेरी ड्यूटी रहती थी कि दादा के पैर दबाना। और दूसरी ड्यूटी थी दादा भोजन करे तब माँ रसोई बनाती, दादा को परोसना। फ़िर जूठन पाता, थाली ले जाता और तीसरा काम था समय पर दादा की चाय देना। मेरे गांम के मुखी पटेल जिसको हम बालुआता कहते थे। ये भी हमारे गांव का, हमारा परिवार एक गुरुद्वार था। कई लोग कंठी लेते थे। ये सब देहाती व्यवस्था थी। वहां सब की आस्था थी। एक मेहमान आता था खीमाआता। ये थोड़ा 'रामायण'के ज्ञाता था, ऐसा लोक कहते थे। और दूसरे एक काना था। अब कोई नहीं है। अब एक जगन्नाथ त्रिवेदीसाहब है। प्रायमरी स्कूल में सात श्रेणी तक उसके आचार्यपद के नीचे मैं पढ़ा। तो दादा की जगह तो रामजी मंदिर का ओटला था। बहुत एकांत जिसका जीवन। न बातचीत, केवल हरिस्मरण। बिलकुल ऐसी असंगता मैंने कहीं नहीं देखी।

सब को अपने गुरु प्रिय होते हैं। आज लोग नकल करते हैं! नामना प्राप्त करते हैं, नाम तक नहीं लेते! जिससे प्रेरणा पाई, जिससे मारग मिला, जिससे जयजयकार हुआ इन व्यक्ति का नाम छुपाना अपराध है। अपराध में दो भाग है। योजनाबद्ध चतुराई से तुम छिपाओ कि मैंने यहां से नहीं पाया; नेटवर्क बनाकर अपराध किया! और दूसरा अपराध का एक भाग वो है कि जो अपराध के योग्य व्यक्ति ना हो उस पर थोपा जाय उसको अपराध कहते हैं। और बहुधा अध्यात्म जगत में ऐसे अपराध लादे जाते हैं! जो अपराध योग्य नहीं होते। ये सब जीवन जीने की कुंजियां है। सब से बड़ा मेरा आश्चर्य आज-कल आख़िर एक साल में तो ज्यादा चल रहा है वो ये है कि कुछ भी पढ़ता हूं तो वोही बात निकलती है जो दादा ने ओलरेडी मुझे कह रखी थी! ये क्या चमत्कार है? आइ कान्ट से यू। हम कुछ नादानियत में बोल दे उसके पीछे कोई दासबोध का कोई सूत्र सपोर्ट करे तो समर्थ की करुणा कैसे भुलूं? मौलि का कोई सूत्र आ जाय और तुम्हारे अंत:करण के निकट पड़ जाय तो ज्ञानेश्वर को कैसे भुला जाय? वारुणी भी पीनी हो तो इससे पीओ। सद्गुरु के मुख से निकले बोल को पीओ। जिसको 'भागवतजी'में गोपिका कहती हैं, 'चुष्ट चुम्बिकम्।' गोविंद, तेरी 'गीता' सुना, ये तेरे होठों का अमृत है। लेकिन गुरु के वचनामृतों को पीनेवाले को कहा जाता है कि ये तो शराबी है! पिअक्कड़ है! जमाने का ये दस्तुर है!

अच्छों को बुरा साबित करना दुनिया की पुरानी आदत है।

मीरां पागल! तुलसी पागल! बदनाम करते हैं ये लोग लेकिन जिन्होंने पीया उसको पता है कि क्या पीया? गुरु के मुख से निकले बोल, मुबारक समझो उसको।

कुदरत ने जो हम को बक्षा है।

ब्रह्म ने हमें बक्षा है उनका नाम। 'विठ्ठल, विठ्ठल', किसने दिया नाम?

वो सब से हसीं ईनाम है ये।

'विठ्ठल, विठ्ठल, विठ्ठल...'

शरमाके ना यूं ही खो देना,
रंगीन जवानी की घड़ियां...

आप को दुनिया ताना मारेगी, कथा में क्या है? कीर्तन में क्यों जाते हो? और शरम आये कि सब निंदा करेंगे। शरमाके जीवन की ये महिमावंत घड़ियों को खो मत देना। दुनिया तो दुनिया है! राम-कृष्ण जैसे अवतारों को भी नहीं छोड़ा है।

गुरु के वचन अनमोल है, उसको पीओ। तो, मेरी ड्यूटी थी। तो ये सब लोग आये, इसमें खीमाभाई जो थे वो किताबें बहुत पढ़ता था। उसने बालुआता को कहा कि बापू, दादा कहां? तो बोले, बैठे हैं मंदिर के पास ओटले। जो आये रामकथा के जानकार लेकिन दादा तो किसी से बात नहीं करते। अब पिताजी ने मुझे चाय ले जाने को कहा। तो मंदिर के ओटले पर मैं बैठा। वहां सब मर्मज्ञ बैठे थे। मेरी स्मृति में अब आया। मुझे खुशी होती है।

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ।।

'उत्तरकांड'का दोहा। भगवान राम अयोध्या आये और तुलसीदासजी ने 'मानस'में एक रूपक बनाया। रघुपति राम चंद्र है और अयोध्या नगर सिंधु है, समुद्र है, जैसे चंद्र को देखकर समुद्र की लहरें उछलने लगती है। सागर उछाल भरने लगे। समंदर शोर कर रहा है, अयोध्या की महिलाएं सज-धज के आज राम आये हैं, अटारीओं में झुक रही है। तो त्रिभुवनदादा को ये लोग पूछे, 'बाबा, इसका अर्थ समझाओ।' एक शब्द नहीं बोले! पांच-दस मिनट मैं भी देखता रहा! मुझे भी समझना पड़ेगा कि दादा से पूछा गया, मेरे लिए तो रहस्य खुलेगा, दस-पंद्रह मिनट हो गई। ये लोग थक गये! दूसरे दिन मेरा 'रामायण' का पाठ दादा के चरणों में। फ़िर उस दिन मैंने कहा, दादा उसने जो पूछा था उसका अर्थ आप ने नहीं बताया!

यह न कहिअ सठही हठसीलहि ।
जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।।

दादाने कहा, हठपूर्वक सठता को पकड़े होते हैं उसको कभी रामकथा सुनाना मत। जो मन लगाकर रामरस को न पीए ऐसे तार्किक को सुनाने की जरूरत नहीं, बेटा। अपनी रामनाम की उर्जा खत्म हो जाय, उसको क्या? शायद मैं समझा देता तो दूसरे साधु को हेरान करते! इसलिए मैं नहीं बोला। 'दादा, वो दोहा उसको तो आपने नहीं कहा। मुझे तो बताओ।' 'सुन बेटे, ये कब का दोहा है? राम का पुष्पक विमान आकाश में आ गया। चंद्र कहां होता है? आकाश में। राम का विमान कहां है? आकाश में। इसलिए तुलसी ने रघुपति को राकेश कहा, चंद्र कहा और चंद्र के साथ कौन होता हे? बुध और रोहिणी होते हैं। विमान में जानकी भी है, लखन भी है। रामचंद्र भी है। बुध, चंद्र और रोहिणी। और बेटा, चंद्र नक्षत्रों से घेरा होता है। रामचंद्र पुष्पक में वानररूपी नक्षत्रों से घेरे हुए है।' फ़िर दादा पूछते हैं, बेटा, चंद्रमा पूर्ण कब होता है? बोले, बेटा, शुक्ल पक्ष की चौदहवीं तीथि पूरी हो जाय फ़िर पूर्णिमा आती है। राम का चौदह साल पूरा हुआ। अब पूर्ण चंद्र आ रहा है। और भरत को मिलेंगे तब पूर्णिमा होगी। और इस रामचंद्ररूपी पूर्णिमा का चंद्र होता है तो राहु ग्रस नहीं सकता। तो शुभ वस्तु तो कहीं भी प्रगट हो सकती है। उसको आदर देना चाहिए।

तो बाप, मैं आप से ये निवेदन कर रहा था कि वोही बात मुझे किसी संत के मुख से सुनने मिलती है, कोई किताब के पत्ते में मिलती है, कोई 'रामायण' का सत्संग चलता है तो इसमें से मिलती है, शास्त्र से मिल जाती है तब मैं चौंक उठता हूं कि ये बात तो ओलरेडी कही गई थी! गुरु सनातन होता है। गुरु कभी पुरातन नहीं होगा। उसकी सत्ता शाश्वत होती है। इसीलिए ग्रंथों से माहिती बहुत मिलेगी, लेकिन अन्डरस्टेंडिंग तो केवल गुरु से ही प्राप्त होगी। इन्फोरमेशन उपर की सत्ता है, तरंगें हैं। अन्डरस्टेंडिंग डेप्थ है, गहराई है। उर्दू का शे'र है-

इस राज़ को क्या जाने साहिल के तमाशाई।
हम डूब के जाने हैं, सागर तेरी गहराई।

सूफ़ी कहता है, किनारे पर खेलनेवालें, छबछबियां करनेवालें इस रहस्य को क्या जाने?

लोगों को कथा की बहुत जरूरत है। और मैं

चाहता हूं, हर प्रांत में ऐसे तेजस्वी कथाकार प्रगट हो। और मेरे युवान कथाकार कहते हैं कि बापू, हम कथा करते हैं और पैसे मिलते हैं वो गायों की सेवा में लगा देते हैं। साधु। और किसी भी कथाकार को सुनो। सा'ब कथाकार कभी छोटा-बड़ा नहीं होता। कथाकार, कथाकार है। कोइ ज्यादा प्रसिद्ध है। बाकी कथाकार परमात्मा का गुणगान गाता है। मेरी दृष्टि में सब महान है। मेरा अनुभव है, मैं कहीं भी कथा सुनने जाता हूं, तो कुछ न कुछ चीज़ जीवन के लिए मिल ही जाती है। यदि दरवाजे खुले रखो तो अपने को उपयोगी कोई न कोई एक सूत्र प्राप्त हो सकता है। कान खुले रखो।

ओशो ने कभी कहा, अमरिका में मेरा द्रोह करनेवाले तो राज्यसत्ता में तत्कालीन लोग बैठे थे वो थे और कुछ ईसाई धर्म के धर्मगुरु थे। इतने ही लोग मेरे विरोधी थे। पूरा अमरिका तो मुझे चाहता और ये चंद लोग अमरिका के नहीं थे। और मैं जहां-जहां गया, लोगों ने मेरा स्वागत किया। और मुझे आभार मानना है इन पांच-सात लोगों का इन्होंने इतना विरोध किया कि पूरे अमरिका को मेरा परिचय दिया! विरोध करनेवाला प्रचार करता है। ये होना चाहिए। गोस्वामीजी कहते हैं-

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।

किस-किसको राजी करोगे यहां? मौज से गाओ, सुनो। आप के दिल में प्रीत है तो सब अच्छे ही लगेंगे। नफ़रत है तो अच्छा भी बुरा लगेगा। हरि भजो।

तो, जो पंक्तिओं को हमनें कथा में, 'मानस-नृत्य'में केन्द्र बनाया उसमें एक सुतीक्ष्ण का नृत्य और एक अप्सरा का ज़िक्र। तुलसी 'अपछरा' कहते हैं। उसको बिलकुल लोकबोली तक जाना है। क्यों मेरी व्यासपीठ ने मुझे प्रेरित किया कि यही पंक्ति जोड़ो?

बाजहिं ताल पखाउज बीना ।
नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।।

हमारे यहां भाषाकोश में एक शब्द है 'तीक्ष्ण', तीव्र, धारदार, नुकीला। छूजे और अंदर उतर जाय। तलवार, राणा प्रताप की हो कि शिवाजी महाराज की हो।

आभमां उगेल चांदलो ने जीजाबाईने आव्या बाळ,
शिवाजीने निंदरुं ना आवे, माता जीजाबाई झुलावे।

ते'दि तारे हाथ रेवानी राती बंबोळ भवानी...
शिवाजीने निंदरुं ना आवे, माता जीजाबाई झुलावे।

माताजी का स्थान करीब-करीब डुंगरा पर है। चोटीला लो, गिरनार में अम्बाजी लो।

तो बाप, 'तीक्ष्ण' और 'सुतीक्ष्ण', भाषा के दो शब्द। तीक्ष्ण मानी धारदार। नृत्यांगनाओं का, नर्तकीओं का तुलसी की विभूतिओं का, नट-नटीओं का, ये सब नर्तकियां है उसका नृत्य सदैव धारदार होता हैं। नुकीले, घायल करनेवाला होता है। सुतीक्ष्ण का अर्थ है ये तीक्ष्ण तामसी नृत्य नहीं, आदमीओं को खत्म करनेवाला नहीं। सुतीक्ष्ण, 'सु' लगा हुआ तीक्ष्ण। एक भक्ति की मीठी पीर जगाये ऐसा नृत्य सुतीक्ष्ण का। अप्सराओं का नृत्य बहुधा रजोगुणी होता है क्योंकि उसका ईरादा तपभंग का है अथवा तो किसीकी मेहफ़िल से सजाना है। अप्सरायें नृत्य में प्रवीण होती है। और सुतीक्ष्ण प्रवीण नहीं हैं, पागल हैं। यहां कोई बंधारण नहीं है।

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई ।

अप्सरा अपना एक लक्ष्य सिद्ध करने आती है धारदार, बहकानेवाला। आज भी जिसके जीवन में उतरा है ऐसे युवकों को मैंने देखा है कि क्रिकेट टीम देखें तब ऐसा नृत्य आता है तो मूँह फेर लेते हैं! मुझे लगता है कि मेरा बोया हुआ पनप रहा है।

आत्मा नर्तक जब हम कहते हैं तब आत्मा की चार विभावना है। एक नृत्य का नाम है विधिनृत्य। एक नृत्य का नाम है विशालनृत्य। एक नृत्य का नाम है विधुनृत्य और एक नृत्य का नाम है शिवनृत्य। एक विधुनृत्य का मतलब है चंद्रनृत्य। विधु मानी चांद। चंद्र का क्षीण होना और वृद्धि होना, आगे जाना, पीछे जाना ये विधुनृत्य है। और भगवती श्रुति कहती हैं, 'चंद्रमा मन सो जाता।' चंद्र ये मन के साथ संलग्न है। ये मन कभी नबळा होता है, कभी सबळा होता है। कभी कोई न कोई मोहरूपी राहु चंद्र को ग्रस लेता है, मन को गिरफ़तार कर लेता है। उसको कहते हैं विधुनृत्य।

दूसरा नृत्य है विधिनृत्य। विधि है बुद्धि। ब्रह्म को हमने बुद्धि कहा है। अस्तित्व का ब्रह्मा जैसे अंदर हमारा एक अंतःकरण है वैसे विराट का अंतःकरण चतुष्ट्य है। जैसे हमारे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अंदर है वैसे अस्तित्व का भी एक मन वो है चंद्र। अस्तित्व का बुद्धि वो है ब्रह्मा जिसको मेरी व्यासपीठ विधिनृत्य कहते हैं। अस्तित्व का विष्णु चित्त। मुक्तानंद स्वामी जिसको चिद्विलास कहते हैं। तुलसीदासजी भी कहते हैं चिद्विलास। ये जड़ का विस्तार नहीं है, ये चिद्विलास है। गुरुकृपा से बुझत-बुझत बुझे। 'विनयपत्रिका'में कहा, कभी समझते-समझते समझ में आता है ये विराट का रास है। और बुद्धि भी नर्तकी है साहब। बुद्धि भी नाचती रहती है; कभी ये निर्णय कराये, कभी ये! इसको विधिनृत्य कहते हैं। 'मीरां तो भई दीवानी।' गोराकुमार महाराष्ट्र का दीवाना था।

पंढ़रपुर ने पादर गोरो नामे जाप के नित्य।
कथा कहु हुं तेनी सांभळो एक चित्ते।

संत का नृत्य व्यक्तिगत नहीं होता, व्यापक होता है। ये एक मेसेज़ है कि तुम ऐसे 'विठ्ठल' का नृत्य करो कि तुम्हारी ममता तुम्हारे पैरों से ही कुचल जाय। अपने आप वर्तुल समाप्त हुए। कथा अद्‌भुत है, चमत्कारिक है। 'विठ्ठल' नाम की महिमा है उसमें लेकिन उसको एक व्यापक रूप में देखे। सब से बड़ी मुश्किल है ममता को मारना। 'मेल मन ममता', ये जो प्रसंग हमारे यहां हुए हैं संतों के चरित्रों में, ये हुई घटना व्यक्तिगत लेकिन हमें सार्वभौम सिद्धांत की ओर लिए चलते हैं। मीरां का नृत्य प्रवीण नृत्य नहीं था, पागलों का नृत्य था। नारद, हनुमान, महादेव का नृत्य प्रवीण नहीं; ये पागलों की जमात का नृत्य है। पागल का अर्थ पंजाबी में होता है, किसी बुद्धपुरुष की बात को पा ले वो ही पागल।

एक घडी आधी घडी, आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध ।।

यही पागल है। स्वामी रामतीर्थ, बादशाह राम; फ़ारसी के बड़े विद्वान, उसने शे'र लिखा है-

इन बिगड़े दिमागों में भरे अमृत के लच्छे है।
हमें पागल ही रहने दो हम पागल ही अच्छे हैं।

सुतीक्ष्ण का नृत्य एक ऐसा नृत्य भक्तिमारग का, भावजगत का जो अंत:करण के स्टेज पर प्रस्तुत किया गया। जिसमें साधन भूला जाय। फिर साध्य। इस साधन के द्वारा क्या प्राप्त करना है? साध्य भूल जाये। सुतीक्ष्ण में नृत्य तभी प्रगटा जब ये तीनों भूल गया। साधक खुद को भूल गया। मुझे कहां जाना है? मेरा साधन क्या है? स्नेह की मदिरा में संत कभी नृत्य में खो जाता है तब स्वयं हरि उसको खोज़ने निकलता है। ठाकोरजी आये। स्वयं रामभद्र पधारें। निकला था राम के लिए, लक्ष्य भूल गया! जब सुतीक्ष्ण नृत्य कर रहा है और अविरल भक्ति प्राप्त की तो राघवेन्द्र वृक्ष के थड़ के पीछे खड़े रहे। जिसकी भक्ति का दर्शक राघव बने। साधु, साधु, साधु! नि:साधन इस नृत्य की भूमिका है।

'मानस' के प्रत्येक प्रसंग को गुरुमुख पीओ और गुरु की आंख के सामने जीओ। पीना है गुरु के मुख से और जीना है गुरु को सन्मुख रखकर। माँ कौशल्या ने देखा, भरत पैदल चल रहे हैं तो ओर लोग भी आदर के कारण नीचे उतरने लगे। भरत ने सब को सवारी दी। सब नीचे उतर गये। कौशल्या ने अपने डोलीवाहक को डोली भरत के पास ले जाने को कहा। भरतजी के पास डोली गई। पर्दे उठाकर भरतजी से कहा, 'बेटा, तू नीचे उतर गया तो पूरा संसार नीचे उतर गया। कैसे चित्रकूट पहुंचेंगे, लक्ष्य प्राप्त करेंगे?' यद्यपि भरत नि:साधनता के उपासक है फ़िर भी माँ के कहने पर वो रथ में बैठे। भक्तिमारग में आदमी को जिद्द नहीं करनी चाहिए। भरत कब तक रथ में बैठे? जिस जगह राम ने रथ छोड़ा, बिलकुल उसी जगह भरत ने रथ छोड़ा। फ़र्क इतना राम रथ का त्याग करते हैं गंगा को देखकर और भरतजी ने रथ गुहराज निषाद अधम, पतीत समाज का आख़िरी व्यक्ति उसको देखा और भरत ने रथ छोड़ दिया। रथ मानी धर्म। आख़िरी आदमी में प्रेम दिखे तो धर्म को छोड़कर उसके गले लगो। भरतजी ने मार्गदर्शक गुरु को नहीं गुह को बनाया। ये है भरत का दैन्य कि मार्गदर्शन कोई बड़ा आदमी दे ऐसा ही नहीं। कभी-कभी समाज का अंतिम आदमी भी तुम्हें ईश्वर का रास्ता दिखा सकता है। भेद छोड़ो। छेक चित्रकूट के मार्गदर्शन में भरतजी चले ये भरतजी का दैन्य है। मेरे दादाजी कभी गाते नहीं। गाते थे अच्छा लेकिन गाते नहीं। एक दिन मैंने कहा तब गाये।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

'गीता' योग शास्त्र है, 'रामचरित मानस' प्रयोगशास्त्र है। पंडित रामकिंकरजी ने ये सूत्र दिया। जो सूत्र 'गीता' ने दिया, 'मानस' में प्रयोगात्मक बानाया। कोई कमज़ोर आदमी को जिसको लोगों ने मारा है, वंचित रखा है उनको भी कोई अगवानी दे दे तो उनमें भी खतरा है अहंकार आने का और वो खतरा आया! भगवान सावधान करते हैं, तुझे मुखिया बनाया, सावधान रहना, तुझे ये न हो जाय कि भरत का लीडर मैं! एक संत का मार्गदर्शन कर रहा हूं! उसी समय देवता लोग आये और फूल-वर्षा करके सही रास्ता बताया। ये भरत का एक शील है कि छोटे व्यक्ति को आदर देते हैं।

'लंकाकांड' में लिखा है, सत्य धजा है और शील पताका है। धजा एक होती है, पताका बहुत होते हैं। कई प्रकार के शील होते हैं। धजा, सत्य एक होता है। धर्मरथ की धजा सत्य है। सत्य की धजा श्वेत होती है। लेकिन शील का रंग तीन है। परशुरामजी रामजी की स्तुति करते हैं वहां शील की व्याख्या है। विनय, शील, करुणा। एक रंग है विनय, दूसरा शील, तीसरा करुणा। तीन रंग है। शील पताका। शीलवान को चाहिए बड़े का विनय करे। गुरु वशिष्ट को दंडवत् करे। गुह हो तो शीलवान को चाहिए उन पर करुणा करे।

नि:साधनता सुतीक्ष्ण के नृत्य की भूमिका है। अप्सरा का नृत्य पतन करनेवाला है और सुतीक्ष्ण का नृत्य उन्नत करनेवाला, उपर उठानेवाला नृत्य है। तीसरा नृत्य है चित्तविलास। चित्त का नृत्य। विश्व के अंत:करण को विष्णु कहते हैं ये, पूरा विलास विष्णु का चैतसिक नृत्य है। और शंकर का अहं नृत्य है जिसको हम तांडव कहते हैं।

कथा के क्रम में राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के संग सुंदर-भवन में ठहराये गये। भोजन करके सब ने विश्राम किया। सायंकाल को नगरदर्शन के लिए विश्वामित्र से ईज़ाज़त मांगी। दोनों भाई नगरदर्शन करने के लिए निकलते हैं। तीन प्रकार के दर्शक है मिथिला में। एक तो बड़े प्रौढ़ जिसको संतगण ज्ञानी कहते हैं, वो राजकुमार को देखते हैं। कोई निकट नहीं जाते। और दूसरे दर्शक थे राम की उम्र के बालकगण, समवयस्क वो राम के साथ चले। अपनी रुचि अनुसार राम को छूकर ये बालक प्रभु को नगरी दिखा रहे हैं। तीसरा दर्शक वृंद था मिथिला की महिलाएं जो झरोखें में खड़ी है। मर्यादा है। सब को रूप में डूबोकर ठाकुर वापस आये गुरु के पास। संध्या-वंदन हुआ।

दूसरे दिन सुबह पुष्पवाटिका में राम-लखन पुष्प लेने जाते हैं। यहां सीताजी से भेंट होती हैं। पहली बार एक दूसरे को मर्यादा से दर्शन करते हैं। माँ दुर्गा की स्तुति करके जानकी भवानी का आशीर्वाद प्राप्त करती है। माँ दुर्गा ने आशीर्वाद दिया जानकी को कि हे सीते, तुम्हारे मन में जो सांवरा बस गया वो वर तुम्हें मिलेगा। जानकीजी सखीओं के संग अपने भवन। राम-लक्ष्मण फूल लेकर गुरु के पास।

सुबह धनुषयज्ञ का निमंत्रण आ गया। राम-लक्ष्मण मुनिगण संग जाते हैं। धनुषभंग की अद्भुत कथा! कोई धनुष नहीं तोड़ पाया और भगवान राम ने धनुष उठाया और तोड़ा! जयजयकार से त्रिभुवन गुंज उठा। जानकी ने जयमाला पहनाई। फ़िर परशुरामबाबा आये; गये। महाराज दशरथजी बारात लेकर आये हैं और मागशर शुक्ल पंचमी राम-जानकी के विवाह की गोरज बेला। विवाहमंडप के द्वार पर दुल्हा आया। परिछन हुआ। ब्याह संपन्न होता है। राम-जानकी, भरत-मांडवी; शत्रुघ्न-श्रुतकीर्ति और लक्ष्मण-ऊर्मिला। चारों का विवाह लोकरीति से और वेदरीति से संपन्न होता है। बहुत दिन बारात रुकी। उसके बाद बारात ने विदा ली। कन्याविदाय सब के लिए करुण ही होती है।

रास्ते में निवास करते-करते बारात अयोध्या पहुंची। जब से राम ब्याहकर आये हैं तब से अयोध्या की सुख-समृद्धि बढ़ने लगी। मेहमानों ने बिदा ली। आख़िर में विश्वामित्र बिदा लेते हैं। राज परिवार ने विश्वामित्र से कहा-

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।
दरसनु देत रहब मुनि मोहू।।

'भगवन्, आप हमारे नाथ है। हम आप के सेवक है। ये भौतिक और आध्यात्मिक दोनों संपदा गुरु आप की है। हम आप के सेवक है। सम्राट होकर भिख मांग रहा हूं। हम आप के बालक है। कृपा करते रहिये। साधना और तपस्या में आप को अवकाश मिले, हमारी याद आये, हमें दर्शन देते रहिये।' विश्वामित्र सराहते-सराहते अपने आश्रम में। यहां 'बालकांड' समाप्त होता है।

लोगों को कथा की बहुत जरूरत है। और मैं चाहता हूं, हर प्रांत में ऐसे तेजस्वी कथाकार प्रगट हो। और मेरे युवान कथाकार कहते हैं कि बापू, हम कथा करते हैं और पैसे मिलते हैं वो गायों की सेवा में लगा देते हैं। और किसी भी कथाकार को सुनो। साहब, कथाकार कभी छोटा-बड़ा नहीं होता। कथाकार, कथाकार है। कोइ ज्यादा प्रसिद्ध है। बाकी कथाकार परमात्मा का गुणगान गाता है। मेरी दृष्टि में सब महान है। मेरा अनुभव है, मैं कहीं भी कथा सुनने जाता हूं, तो कुछ न कुछ चीज़ जीवन के लिए मिल ही जाती है। यदि दरवाजे खुले रखो तो अपने को उपयोगी कोई न कोई एक सूत्र प्राप्त हो सकता है।

धर्म ऐसा हो जो आदमी को मुस्कुराहट दे

मानस-नृत्य ॥८॥

इस आठवें दिन की मंगल बेला में अति प्रसन्नता का विषय है। आज समर्थ भगवान स्वामी रामदासजी, एक ग्रंथ का, 'बालकांड' का लोकार्पण हुआ। और इस पावन अवसर पर हमारे पूजनीय स्वामी गोविंदगिरिजी महाराज पधारे। कुछ वचनामृत कहे। और इस ग्रंथ-प्रकाशन में अपनी-अपनी आहुति देनेवाले सभी पूज्यगण, सेवकगण सबको में साधुवाद देता हूं। परमात्मा से प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है कि समर्थ जिस ग्रंथ के पीछे हो वो ग्रंथ ग्रंथ नहीं रहता, वो सद्ग्रंथ बन जाता है। कभी-कभी ग्रंथ ग्रंथियां भी निर्मित करता है! इसलिए परम वैष्णव नरसिंह मेहता ने कहा कि -

ग्रंथ गरबड करी वात न करी खरी।

कभी-कभी ग्रंथों ने ग्रंथियां भी निर्मित की है! दुनिया में कितने ग्रंथ है? चाहे जिसके बारे में जो विशेषण लगाओ, मुबारक! लेकिन विवेकबुद्धि से अध्ययन या श्रवण या गुफ्तगू करने से पता लगता है, इन पुस्तकों को नाम तो ग्रंथ का मिला, लेकिन काम तो बहुधा समाज में ग्रंथियां निर्मित करने का किया है! दीवारें पैदा करने का काम किया है! द्वार नहीं बने! धन्य है संतों का स्पर्श पानेवालें ग्रंथ जो अपने आप स्वत: सद्ग्रंथ बन जाता है। और सद्ग्रंथ का नितांत कार्य है प्रत्येक की ग्रंथियों का भेदन हो, छेदन हो, निर्मूलन हो। मैं मेरी बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

वेदों ने कहा है, 'अयं मे हस्तो भगवान। अयं मे भगवतर:।' इन्सान का हाथ विश्व की बीमारियों की औषधि है। क्यों हम 'मानस' को छूते रहते हैं? मैं बहुत नतमस्तक हूं कि इस देश के ऋषियों ने 'पाठ' शब्द दिया। पूरी दुनिया में 'मानस' की कृपा से, संतों के आशीर्वाद से, आपकी दुवा और शुभकामना से मैं 'रामायण' लेकर घूमता रहता हूं। लेकिन विश्व में कई प्रकार की पुस्तके हैं, एक बार पढ़ लो, अलमारी में रख लो! पाठ नहीं किया जाता। पाठ केवल 'दासबोध' का होता है, पाठ केवल 'ज्ञानेश्वरी' का होता है। पाठ एकनाथ नामदेव के ग्रंथ का होता है। पाठ तुकारामजी के अभंग का होता है। पाठ 'रामचरित मानस' का होता है। पाठ 'श्रीमद् भागवतजी' का होता है। पाठ 'भगवद्गीता' का होता है। पाठ वेदों का होता है। शास्त्रों का पाठ होता है। पाठ 'हनुमानचालीसा' का होता है। ये पढ़कर छोड़ देनेवाली किताबें नहीं है। ये एतबार की किताबें है। ये अलमारी में रखने की नहीं। इसको कोई छुए; छुए और गहराई में जाय। और गहराई में जाने के लिए नितांत जरूरी है सद्गुरु। बिना सद्गुरु आप पंडित बन सकते हैं, परिचित नहीं बन सकते। गहराई को छूने के लिए गुरुकृपा चाहिए। एक शे'र सुनिए -

उसकी नजर मेरे बदन पर आकर ठहर गई।
वर्ना इरादा तो था कि रुह उसके हवाले कर दूं।

उसकी दृष्टि केवल उपर-उपर रही, वर्ना बुद्धपुरुष कहता है, मेरा इरादा तो था कि ओर गहराई में दृष्टि जाती तो मेरी आत्मा उसके हवाले कर दूं। क्यों पाठ करते है? और गहरा जाने के लिये चाहिए गुरुमुख। सद्गुरु कृपा। तुलसी कहते हैं, साधु तो वो है जो मधुकर की समान सब जगा से ले। अपने पास रखे नहीं; बांटते जाय, बांटते जाय।

तो, इस मंगलमय चेतना को प्रणाम करते हुए मैं आगे बढ़ूं। 'मानस-नृत्य' मानी हृदय का नृत्य। 'मानस-नृत्य' मानी आत्मा का नृत्य। भूलचूक लेवीदेवी! लेकिन मेरे पास जो लिस्ट आया है उसके मुताबिक मैंने उसको ठीक से देखा तो मैं कहना चाहूंगा कि 'रामचरित मानस' में सात तत्त्व सबको नचाते हैं। और जहां गुरुकृपा से मेरी आंखों ने निर्णय लिया। श्रोताओं को चाहिए सुने और चुने। इसीलिए कथा है।

मुझे कल एक चिठ्ठी में पूछा कि 'बापू, सत्य के बारे में, कथा के बारे में, लीला के बारे में, चरित्र के बारे में, बुद्धपुरुष के संकेत के बारे में आपका क्या अभिप्राय है?' अब मुझे पूछा तो मैं कहूं, सत्य के बारे में मेरा यही अभिप्राय है कि सत्य जहां से मिले ले लो। जहां से शुभ प्राप्त हो, खिड़कियां खुली रखो। नगर-नगर, गांव-गांव गाया बाउलों ने, सूफियों ने, वारकरी संप्रदाय के परम संतों ने गाया। नाचा, घूमते रहे, लेकिन समाजवालों ने अपनी खिड़कियां ही बंद रखी! अंदर आने ही नहीं दिया!

राशिद किसे सुनाउं गली में तेरी ग़ज़ल,
उनके मकां का कोई दरीचा खुला न था।

लोक बंधियार है! लोक उदारचित्त नहीं है! आज मनुष्यजीवन में विवेक प्रकट करने का एक मात्र सफल कोई माध्यम हो तो हरिकथा है। भगवद्कथा से बहुत परिवर्तन हो रहा है, होगा, होगा, होगा। हम श्रद्धावान है।

चिठ्ठी है, 'बापू, कल आपने हम साधकों को कहा कि जगत को कथा की आवश्यकता है, खूब कथा कहो। किन्तु बापू, यहां तो हमें डराया भी जाता है कि आप कथा नहीं कर सकते, क्योंकि आप ब्राह्मण नहीं है! बापू, कथा कहने हेतु कोई विशेष वस्तु की जरूरत है?' मैं आपसे इतनी प्रार्थना करूं कि आपको ऐसा कहे उसको इतना ही कहना कि कागभुशुंडि कौन था? पक्षी, चांडाल तुलसी कहते हैं। हरि भजते-भजते, गाते-गाते; कोई जन्मों से नहीं हो पाता वो आप और हम जीवन से बन पाते हैं। इसलिए मेरी समझ में कलियुग में ये चर्चायें बेकार है! और ऐसे कई दृष्टांत मैं दे सकता हूं। मेरी पीठ संवाद की पीठ है। ये ज्ञानपीठ है, ये व्यासपीठ है, ये विद्यापीठ है, ये धर्मपीठ है, ये संतपीठ है, ये भुशुंडि की पीठ है, ये प्रयाग की पीठ है, ये कैलासी पीठ है, ये तुलसीपीठ है। यहां संवाद ही संवाद है। तो कोई बोले तो विवेक से जवाब देना। और भुशुंडि ऐसा वक्ता है कि शंकर भगवान कहते हैं, हे पार्वती, जब दक्षयज्ञ में तुम्हारा देह शांत हो गया। तुम्हारे वियोग में मैं जरा विरह में था। कभी ध्यान किया, कभी समाधि, कभी संतों से कथा सुनी, कभी महात्मा को कथा सुनाई। लेकिन मन नहीं लग रहा था, तब कुछ काल के लिए मैंने शिव शरीर छोड़ा और हंस शरीर धारण किया और हिमालय के नीलगिरि पर्वत पर पहुंचा। जहां कौआ कहता था कथा उसमें अंतिम पंक्ति के बैठकर मैंने कागभुशुंडि के मुख से पूर्ण 'रामचरित मानस' सुना। ये मेरा कोई कहना नहीं है, शंकर स्वयं कहते हैं। कुछ पाबंदी पर सविनय विचार होना चाहिए कि प्रेक्टिकल क्या है, हकीकत क्या है? जीव और जीभ बेताब बने तब बोलो। खड़े-खड़े बोलो, बैठे-बैठे बोलो। कहीं भी बोलो, गाओ। ये महाराष्ट्रीयन संतों की बहुत उपकारी रही विश्व पर कि खड़े-खड़े वर्तुलाकार नाचे-गाये। नृत्य किया है।

धर्म ऐसा हो जो आदमी को मुस्कुराहट दे। प्रसन्नता अद्भुत देन है। इसलिए मैं कहता हूं, प्रसन्नता से सुनो। लेकिन पाबंदियां हो गई कि मुस्कुराना मना है! नाचना मना है! मीरां ने नाचकर गाया है। चैतन्य ने उर्ध्वबाहु पाया है। जगद्गुरु तुकाराम ने अभंग से पाया है। बेडियां लोहे की हो या सोने की, क्या फ़र्क पड़ता है? बेडियां, बेडियां है। मुस्कुराओ कि आप रामकथा में हो। और हमारे सब कथाकार, पूर्वाचार्य हर स्थिति में

मुस्कुराये हैं। मुस्कुराना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कभी लोकमान्य ने कहा था, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' वैसे इस जीवन में विठ्ठल को पाना जन्मसिद्ध अधिकार है। हेतुरहित नृत्य करना। कामना रहित गाना। लेकिन कभी धर्म के नाम पर, तथाकथित संप्रदायों के नाम पर लोगों ने दरवाजे बंद कर दिए! आदमी की मुस्कुराहट मजहबों के नाम पर छीन ली गई है! धर्म देता है प्रसन्नता। सब पीकर बैठे हैं, लेकिन कौन-सा? गोपीजन कहती है -

तव कथामृतं तप्त जीवनं। कविभिरीडतम् कल्मषापहम्।
श्रवण मंगलम् श्रीमदाततं भूवी गृणन्ति ते भूरिदा जनः।

तो बाप, मुस्कुराये। भगवत-गीत कोई भी गा सकता है। कौआ गाता है। यहां शुक गाता है, इन्सान ने कौन-सा गुनाह किया है? डरो मत, अभय आता है सत्य की शरण में। ये मेरा जीवन का अनुभव है। जिसको भी जगत में अभय आया ये सत्य की शरण में ही आया। ये सत्य की संतान का नाम है अभय। जिसके पास सत्य है वो सदैव अभय रहेगा। अभयता आती है हरिनाम से। अभयता आती है प्रभुचिंतन से। हम भी व्यासपीठ से चाहे कि ओर कथाकार आये, ओर भगवतचरित्र सुनाया जाय। गांव-गांव भगवद्कथा होनी चाहिए। और बहुत लोग हो, कम लोग हो, देखना ही मत। कथा कथा है। कैलास पर कथा केवल पार्वती सुनती होगी और विशेष गण। भुशुंडि के पास कुछ वृद्ध विहंग सुनते थे। याज्ञवल्क्य महाराज के चरणों में बैठे भरद्वाजजी सुनते होंगे। कथा भीड़ का विषय है ही नहीं, कथा भाव का विषय है। कभी-कभी वक्ता को गाना भी चाहिए और खुद को सुनना चाहिए। अपने कान को श्रोता बनाओ, गाओ, मुस्कुराकर गाओ।

आज सोचा तो आंसू भर आये,
मुद्दते हुई मुस्कुराये...

परम की याद में यदि आंख में आंसू आ जाय तो ये शोक के आंसू नहीं। आंसू नर्तक बनकर तुम्हारे गाल के स्टेज पर नृत्य कर रहे हैं। नंद क्या करते थे? यशोदा क्या करती थी? उद्धवजी आये, बस उसको याद करते हैं। उसका हंसना, विश्व विमोहित स्मित; कृष्ण हंसे हैं, मुस्कुराये हैं। मेरे रामभद्र ठाकुर बोलते थे तो पहले थोड़े मुस्कुराते थे। 'उद्धव, उसका हास्य हमको मार रहा है! उसकी बोली कानों में गुंज रही है।' स्मृति, स्मृति। और कृष्ण स्मृति में जब आंख डबडबा जाय, इससे अधिक विश्व की प्रसन्नता कौन हो सकती है? व्रज में आज भी वो ही आंसू चल रहे हैं। व्रज के प्रत्येक वृक्ष व्रजवासी के आंसूओं से सींचे जा रहे हैं। असली प्रसन्नता है भगवद्भाव। भगवद् स्मृति में आंख में से आंसू निकले तो आंख को भी पवित्र करता है और हृदय को भी पवित्र करता है। दोनों की शुद्धि अश्रुओं से होती है। शरणागति के मारगवालों की दो ही संपदा है, एक अश्रु और दूसरा अपने गुरु का आश्रय। अश्रु और आश्रय छोड़कर कोई उपाय नहीं। दृढाश्रय जिसको वैष्णव परंपरा कहती है -

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

तो, सत्य जहां से मिले, ले लो। बुद्धपुरुष के संकेत के बारे में इतना ही कहना है, संकेत पर चिंतन करे कि बुद्ध ने गुलाब का फूल क्यों पकड़ रखा है? बुद्धपुरुष के संकेत को पकड़ो। जहां संकेत मिले, चिंतन हो। जहां सत्य मिले, स्वीकार हो। जहां कथा मिल जाय, श्रवण करो। जहां लीला मिल जाय, दर्शन करो। जहां चरित्र मिल जाय, चरित्रनिर्माण करने का प्रामाणिक प्रयत्न करो। कथा मिल जाय, तो कीर्तन करो, नाचो, गाओ।

तो बाप, 'रामचरित मानस' में सात लोग नचानेवाले हैं। और जो सात नचानेवाले हैं, वे अठ्ठाईस को नचाते हैं। एक तो नचानेवाला है भगवान राम।

नट मर्कट इव सबहि नचावत ।
रामु खगेस बेद अस गावत ।।
उमा दारु जोषित की नाईं ।
सबही नचावत रामु गोसाईं।

दूसरी नचानेवाली व्यक्ति है, वो है हरिमाया। परमात्मा की माया सबको नचाती है। पूरे जगत को

माया नचाती है। 'भगवद्गीता' की ये गुणमयी माया। तीसरी व्यक्ति हमको नचानेवाली है काम।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ।
को जग काम नचाव न जेही ।।

तो, कामदेव नचाता है हमको। कभी हमारे जीवन में हर्ष-उल्लास के प्रसंग आते हैं, विवाह के प्रसंग आते हैं, उत्सवों के प्रसंग आते हैं, वो भी हमें नचा देते हैं। हमें ठुमका लगवा देती है। दुल्हे की सवारी निकलती है तो कितने आगे नाचते हैं!

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नर मर्कट की नाईं।।

जैसे नट नचाते हैं वैसे नारी भी नचाती है। नारी मिन्स माया, वो भी नचानेवाली। नारी मिन्स विष्णुमाया, परमात्मा की माया। और नचानेवाले हैं अयोध्या के राजकुमार तुरंग को नचाते हैं, घोडे को, अश्व को नचा रहे हैं, तो ये सात जो है उन्होंने अठ्ठाईस को नचाया। एक तो अप्सरा नृत्य करती है। दूसरे भूत नाचते हैं। शंकर के ब्याह में भूत नाचे। तीसरी 'माया खलु नर्तकी बिचारी', माया भी नाचती है। माया जीवों को नचाती है। देवताओं की स्त्रियां नाचती है। सातवां घोडे नाचते हैं। सगुन नाचते हैं। नववां देवता लोग नाचते हैं। 'नाचही लावही गावही सेवा।' दसवां नृत्य, मयूरों का नृत्य। 'मानस' में मृत्यु का नाच बताया गया। मृत्यु महाराज दशरथ के मस्तक पर नाच रहा है। फिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नचाया। तेरहवां नृत्य नट नाचता है। नट नाचता भी है, नचाता भी है। पशु नाचते हैं 'रामचरित' में। जहां निशाचर भी नृत्य कराते हैं। जहां-जहां राक्षस मिलते हैं तो बंदर लोग उसे घेर लेते हैं। स्नेह की सुरा पीकर सुतीक्ष्ण भी नाच रहा है। बंदर भी नाचते हैं एक अर्थ में। काल का नृत्य भी है 'मानस' में। पिशाच-पिशाचिनी भी नाचती है। हाथ और मस्तक के बिना धड नाचते हैं 'मानस' में! नर्तक समाज नृत्य करते हैं। मुनियों का मन 'रामचरित मानस' में नाचता है। नारद नाचे। ब्रह्माजी भी नाचे हैं। भुशुंडि कहते हैं कि हरिमाया ने बहुत नचाया है।

पूरा जगत नाचता है। स्वयं ठाकुर 'मानस' में नाचते हैं-

रूप रासि नृप अजिर बिहारी।
नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी।

और अठ्ठाईसवां नर नाचता है। तो, सात तत्त्व नचानेवाले हैं और अठ्ठाईस तत्त्व उसके ईशारों पे नाचते हैं करीब-करीब। प्रणव पंड्या ने गज़ल लिखी है-

शुं विचारे छे, शुं काढे छे क्यास नर्तक।
होय नर्तक ए तो बारेमास नर्तक।
क्यांक मीरां झांझरीथी पद लखे,
क्यांक चोपाईथी तुलसीदास नर्तक।

एक श्रोता ने पूछा है, इस पंक्ति के बारे में पूछा है -

करि बिनती निज कथा सुनाई।
रंग अवनी सब मुनि दिखाई।।

'बापू, जनकजी ने रंगभूमि विश्वामित्र की अगवानी में

राम-लखन को पूरी रंगभूमि दिखाई तब ये क्या लिखा है, निज कथा सुनाई। ये कौन-सी कथा जिसको यहां जनक निज कथा कहते हैं?' फिर रहस्यवाली बातें आती है। इनके रहस्य गुरुकृपा से खुलते हैं। 'मानस' में जो चौपाईयां होती है, शास्त्रों में जो श्लोक और मंत्र होते हैं इनमें शब्दब्रह्म में तो अर्थब्रह्म होता ही है, लेकिन जो खाली जगह बीच में होती है वह परब्रह्म होता है। उसमें परम अर्थ छिपा होता है वो कोई शंकर जैसा बुद्धपुरुष मिल जाय वो जो खाली जगह है वो पढ़ा देते हैं।

तो, पूरी रंगावनी दिखाई जनकजी ने और निज कथा मिन्स कौन-सी कथा सुनाई? पांच कथा सुनाई। दिखाते दिखाते पहली कथा जनकजी ने सुनाई ये धनुषभंग का जो मैंने निर्णय किया है, ये धनुष मेरे पास आया तबसे वहां रखा था। मैं रोज वहां धनुष की पूजा करने जाता था और मेरे साथ सहायक भी रहते थे। एक दिन सीयाजुने पूछा, पिताजी आप रोज चलकर इतने दूर जाते हो, श्रमित हो जाते हो? भजन और भोजन आदमी खुद करे तब संतुष्टि होती है। जनक सम्राट है। लेकिन पूजा स्वयं करते। जानकीजी सायंकाल को पता न लगे ऐसे वो राजभवन में धनुष्य को लेकर आई और एक कोने में रख दिया। सुबह जनकजी पूजा की सामग्री लेकर निकले तो सीयाजु ने कहा, पिताजी, वो धनुष तो यहां है भवन में। कहां? आश्चर्यचकित जनक गये तो कोने में धनुष! बेटी, ये धनुष कौन ले आया? मैं ले आई। खेलने गई थी तो ले आई। जनकजी विश्वामित्र को कहते हैं तब से मैं चिंतित हो गया। ये एक निजकथा है। अब क्या था, धनुष कोने में रख दिया था और फिर एक क्रम लग गया। सुबह-सुबह सुनैनाजी गोबर मंगाती थी, सखियों से गाय का गोबर।

गाय की सेवा करो। ये गायों का मुल्क है। पूरी पृथ्वी गाय का प्रतीक है। पूरी पृथ्वी का प्रतीक गाय है। गो-प्रीति हो इस देश में। गौ माता का जतन हो। जिसके गोबर में भी लक्ष्मी हो। इस देश खेतीप्रधान है, गोबर प्रधान है, गोबर से अन्न पैदा होता है और हमारे अन्न के द्वारा अर्थसमृद्धि बढ़ती है। गाय पालना शुरू करे यदि व्यवस्था हो। समुद्रमंथन से सुरधेनु निकली है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए अपनी आवक का दसवां हिस्सा प्रामाणिकता से बिलग रखे। किसी छात्रों की फीझ, निर्वस्त्र के वस्त्र, कोई विधवा माता के अन्न के लिए। मरीज़ की शुश्रूसा के लिए दसवां हिस्सा निकाले। गाय को बचानी है तो गाय को प्रेम करे। तो, सुनैनाजी अपनी दासियों के पास रोज गोबर मंगवाती थी और कोने में जो शिवधनुष्य है वहां गोबर का सुबह में लिंपन होने लगा। तो, तीन जगह लिंपन होता था। कोनेवाला भाग बाकी रह जाता था। एक दिन सीयाजु ने देखा कि ये कोनेवाला भाग तो बिना लिंपन का रह जाता है तो एक दिन सीयाजु ने इस धनुष को अपने हाथ से उठाकर वहां भी सुनैना की उपस्थिति में गोबर का लिंपन कर दिया। उस दिन मेरी तरह सुनैना भी स्तंभित हो गई कि ये कौन तत्त्व है! जनकजी ओर चिंतन में डूब गये कि ये महाशक्ति है क्या? तो ये तीसरे कल्प की कथा सुनाई।

सीयाजु और उनकी सखी धनुष के दोनों छेड़े पे आमने-सामने बैठते थे और सखी जब गिरने लगी तो सीयाजु नीचे उतरकर धनुष को ठीक करती है तब झटका लगा! तब जनकजी कहते हैं, मैंने प्रतिज्ञा ले ली कि मेरी बेटी को झटके से धनुष लड़खड़ा जाय इस बेटी तो उसको ही मैं दूंगा कि इस धनुष उठाकर जो भंग कर दे। एक चौथी कथा सुनाई चलते-चलते। एक दिन मैं राजकाज से निवृत्त होकर जल्दी आ गया था भवन में तो मैंने देखा, सीया स्वयं अकेली इस धनुष को दोनों हाथ से उठाकर नृत्य करती थी! तब मैंने पक्का निर्णय कर लिया कि ये जानकी केवल मेरी पुत्री नहीं है, जगत की माँ है, ये परमतत्त्व है।

पांचवीं कथा सुनाई मुनि महाराज, तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि एक साल में कोई भी कभीआ जाय, मुझे खबर दे, समारंभ रचूंगा। कोई धनुष तोड़े जानकी देहु। एक साल से ये प्रक्रिया जनकपुर में चल रही है। आज उसका आखिरी दिन है। साल पूरी हो जाएगी। राघव समझ गये। ये पांचवीं कथा है। 'हरि अनंत हरि

कथा अनंता।' एक दक्ष की भी कथा है। जनक कहते हैं विश्वामित्रजी से कि महाराज दक्ष प्रजापति का यज्ञ भगवान शंकर ने विध्वंस किया तब ये धनुष का उपयोग हुआ था और ये कार्य पूरा होने के बाद भगवान महादेव ने धनुष देवताओं को सोंप दिया और देवताओं ने हमारे कुल के पूर्वजों को प्रदान किया। तब से हमारे कुल में धनुष पूजा जाता है।

हमारे यहां व्यवस्था के रूप में चार वर्ण है। चारों वर्ण का एक विशिष्ट नृत्य है। चार युगीय नृत्य कौन-सा है? सतजुग का नृत्य क्या था? त्रेता का प्रधान नृत्य क्या था? द्वापर का प्रधान नृत्य किस किसम का था और कलियुग के नृत्य की क्या डेफिनेशन थी? तीसरा चतुष्कोण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म का नृत्य मानी क्या? अर्थ का नृत्य क्या? काम का नृत्य क्या? और मोक्ष का नृत्य क्या? ये भी सोचे। राम का नृत्य क्या? भरत का नृत्य क्या? लक्ष्मणजी का नृत्य क्या? और शत्रुघ्न का नृत्य क्या? अभी ओर कहना है। शंकर का नृत्य क्या? याज्ञवल्क्य का नृत्य क्या? भुशुंडि का नृत्य क्या? और तुलसी का नृत्य क्या? और अवसर मिला तो, मोरारिबापू का नृत्य क्या? पूरा जगत नृत्यमय है। पूरा संसार नृत्यमय है।

'रामचरित मानस' में रघुबीरचरित है, प्रभुचरित है, शिवचरित है, उमाचरित है; भरतचरित है, हनुमंतचरित है, भुशंडिचरित है, नारीचरित है, बालचरित भी है। 'अयोध्याकांड' व्यक्ति के यौवन की ओर ईशारा है। 'अयोध्याकांड' के आरंभ में गोस्वामीजी ने शिवस्तुति की। क्योंकि युवानी में ही कुछ विशेष विकार साधक को सताते हैं। और इन विकारों का शमन करनेवाला महादेव है, इसीलिए युवान को चाहिए युवानी में महादेव का आश्रय करे। शिव को ध्यान में रखके मर्यादा का जतन करे। शिव भी शादी करते हैं। शिव की जटा में-मस्तक में गंगा है। युवक, युवानी में तेरे मस्तिष्क में विवेक की गंगा रखना कि क्या कर्तव्य है। बड़ों की सेवा करके शील रखना। ये सूचना है गंगधारा की। शिवजी के भाल में बालचंद्र है। हे युवक, बालचंद्र में काला धब्बा नहीं है। तेरी बुद्धि श्वेत रखना। और नया सीखने की कोशिश करना। कंठ में शिव को विष है। हे युवक, युवानी में ही तुझे विष पीने का अवसर आयेगा उस समय नीलकंठ हो जाना। विष पेट में उतारेगा तो तू जलेगा, वमन करेगा तो तेरा समाज जलेगा। विष को तेरे कंठ में रखना और शिव का स्मरण करना। भूषण भुजंग न बन जाय उसका ध्यान रखना। समृद्धि का अतिरेक तुझे सूर्य की भांति डंस ना ले।

दूसरे श्लोक में भगवान राम के चित्त की अवस्था का वर्णन किया है। राज मिलने की बात हुई तो न प्रसन्नता आई और वन में जाने की बात आई तो न ग्लानि हुई। तीसरे श्लोक में सीतारामजी को नमन किया। 'अयोध्याकांड' के आरंभ में -

श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायक फल चारि।।

मुझे लगता है, गोस्वामीजी ने पहले 'हनुमानचालीसा' का सर्जन किया। ये मेरा अपना मत है। हनुमान शंकर है, ये शंकरावतार है। तो, हनुमानजी सत्य है, 'रामचरित मानस' प्रेम का ग्रंथ है। विनय मानी करुणा। तो, अयोध्या के आरंभ में गुरुवंदना पहले हैं। युवानी को चाहिए कम बोलना। अवसर मिले पांच मिनट, दस मिनट एकांत में बैठे। तीसरा, बिलकुल शून्यमनस्क रहना।

महाराज दशरथजी ने वशिष्ठजी से राय ली कि राम को राज दे दे। एक रात का विलंब और एक ममता की रात बीच में आ गई उसने रामराज्य चौदह साल पीछे धकेल दिया! कैकेयी की ममता ने दो वरदान मांग लिये! महाराज दशरथजी परवश हुए और राम को चौदह साल का वनवास और भरत को राज की मांग आई। वनवासी वेश लेकर राम-लक्ष्मण-जानकी अयोध्या से निकल चुके। सुमंत रथ लेकर जाते हैं। तमसा तट तक अयोध्या साथ गई। एक रात्रि मुकाम ठाकुर ने गंगा के तट पर किया। सीसम तरु के नीचे प्रभु का विश्राम हुआ।

राजमुगट की जगह जटा का मुगट हुआ। नरसिंह मेहता का पद है -

सुखदुःख मनमां न आणीये, घट साथे रे घडिया;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथना जडिया।

प्रभु सुमंत को समझाकर लौटा देते हैं। केवट ने पादप्रक्षालन किया। प्रभु को गंगा पर किया। पदयात्रा का आरंभ हुआ। भरद्वाज ऋषि के आश्रम में एक रात, उसके बाद आगे की यात्रा। गुहराज को विदा दे गई। उसके बाद वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचते हैं। फिर भगवान चित्रकूट पधारते हैं। यहां सुमंत अयोध्या आते हैं। राम, लक्ष्मण, जानकी कोई नहीं आये! अवधपति ने छ बार रामनाम का उच्चारण करते हुए प्राणत्याग कर दिया। भरतजी को बुलाये गये। भरत सदैव राम से दूर रहते हैं। क्योंकि साधु को समझना आसान नहीं है। गोस्वामीजी भरतजी को समुद्र कहते हैं। एक बार दादाजी ने भी कहा था बेटा, भरत समुद्र है और लखन आकाश है। लक्ष्मण का त्याग समर्पण साफ़- साफ़ दिखता है। गहरे समुद्र में क्या-क्या छिपा है, दिखना मुश्किल है!

राम वनवास की असली बात तो चौदह साल रामवनवास जाने की यही है कि भरतरूपी समुद्र को चौदह सालरूप मंदराचल उनमें डालकर इस साधु को मथकर विश्व को प्रेम का अमृत देना था। यदि ये मंथन न होता तो रामराज्य भी हो जाता, रावण भी मर जाता प्रारब्ध से लेकिन विश्व को प्रेम-अमृत नहीं मिलता। लोगों को भरत के भीतर दबे रत्नों का परिचय हो। तुलसीदासजी 'विनयपत्रिका' में लिखते हैं-

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।

जिसको सीताराम प्रिय ना हो वो कितने ही परमस्नेही क्यों ना हो? उसको छोड़ दो। भरतजी आये। पितृक्रिया हुई। रामदर्शन को जाने का निर्णय हुआ। सबको लेकर भरतजी निकले। शृंगबेरपुर आये। गुहराज साथ चला। भरद्वाज के आश्रम रिद्धि-सिद्धि का प्रभाव देखा। उसके बाद चित्रकूट पहुंचते हैं। जनकजी भी आये। बहुत बड़ी सभा हुई। आखिर में प्रभु ने भरत को पादुका दी। पादुका लेकर श्री भरतजी लौट आते हैं। पादुका सिंघासन पर स्थापित की। पादुका को पूछपूछकर राज-काज करते हैं। भरतजी माता और वशिष्ठ से इजाजत लेकर स्वयं भेख धारण करते हैं। नंदिग्राम में कुटिया बनाकर रहते हैं। बड़े-बड़े मुनि लोग शरमिंदे हो जाय ऐसा ये गृहस्थ का तप था। राजघराने के तीन नारीपात्र ऊर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति अभी तक चूप है। नमन हो मांडवी को, श्रुतकीर्ति को और ऊर्मिला को। पृथ्वी इन महिलाओं की ऋणी रहेगी। शत्रुघ्न महाराज सेवा में लग गये हैं। भरतचरित्र का समापन करते हुए गोस्वामीजी 'अयोध्याकांड' को समाप्त करते हैं।

धर्म ऐसा हो जो आदमी को मुस्कुराहट दे। प्रसन्नता अद्भुत देन है। लेकिन पाबंदियां हो गई कि मुस्कुराना मना है! नाचना मना है! मीरां ने नाचकर गाया है। चैतन्य ने उर्ध्वबाहु पाया है। जगद्गुरु तुकाराम ने अभंग से पाया है। बेडियां लोहे की हो या सोने की, क्या फ़र्क पड़ता है? बेडियां, बेडियां है। मुस्कुराओ कि आप रामकथा में हो। और हमारे सब कथाकार, पूर्वाचार्य हर स्थिति में मुस्कुराये हैं। मुस्कुराना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन कभी धर्म के नाम पर, तथाकथित संप्रदायों के नाम पर लोगों ने दरवाजे बंद कर दिए! आदमी की मुस्कुराहट मजहबों के नाम पर छीन ली गई है!

लोकमत बारबार बदलता है, साधुमत कभी बदलता नहीं

'मानस-नृत्य' की कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हो रही है। 'अरण्यकांड' तुलना में छोटा है। करीब-करीब तेरह साल का चित्रकूट निवास करके भगवान राम चित्रकूट से आगे की यात्रा का निर्णय करते हैं। साधुवेश में एक जगह रहने से अच्छा नहीं। इसलिए अब भगवान स्थळांतर करना चाहते हैं। लोग अब जानने लगे हैं और विशेष जान लेंगे तो ललित नरलीला जो करनी है विशेष, उसमें शायद बाधा आ सकती है। इस निर्णय से पहले एक घटना होती है। भगवान राम पुष्पों की माला का शृंगार करके सीयाजू को शृंगार करते हैं। उसके बाद प्रभु अत्रि ऋषि के आश्रम में आते हैं और अत्रि ने प्रभु की स्तुति की-

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।
भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।
निकाम श्याम सुंदरं । भवाम्बुनाथ मंदरं ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ।।

अत्रि ने स्तुति की। भक्तिवर पाया। सीयाजू ने अनसूयाजी को प्रणाम किया। नारीधर्म शिक्षा प्राप्त की। फ़िर प्रभु आगे बढ़े। कई ऋषि-मुनिओं को मिलते हुए भगवान सुतीक्ष्ण के प्रेम का आदर करते हैं। और सुतीक्ष्ण रामजी को कहते हैं कि बहुत दिन हो गये मेरे गुरु ने मुझे दीक्षा दी, ज्ञान दिया और मैं जब गुरुदक्षिणा देने गया कि मैं क्या दूं? तो मेरे गुरु ने कहा, 'कुछ नहीं।' तब सुतीक्ष्ण ने मन में फैंसला किया कि विश्व में किसीने अपने गुरु को न दिया हो ऐसा कुछ दूंगा और वो निर्णय कर रहा है कि कभी मेरे आश्रम में प्रभु आये तो मैं भगवान को लेकर गुरु के पास जाउंगा। बिना भगवान गुरु के पास मैं नहीं जाउंगा। और सुतीक्ष्ण आज रामजी को लेकर कुंभज के पास जाते हैं। प्रपन्न शिष्य चाहे तो गुरु को भी परमात्मा की प्राप्ति करा सकता है। ये भी एक संभावना यहां बताई। कुंभज के पास आये। कुंभज से मंत्रणा होती हैं। असुरों का नाश और साधु-परित्राण करने की योजना बनती है। और कुंभज ऋषि भगवान से कहते हैं कि आप गोदावरी के तट पर पंचवटी में निवास करे। वहीं से आप को सुविधाएं रहेगी। वहीं से प्रभु की यात्रा आगे बढ़ती है। बीच में जटायु मिलते हैं। प्रभु ने जटायु से पितातुल्य संबंध जोड़ा और पंचवटी में आकर निवास करने लगे। लक्ष्मणजी ने पंचवटी में प्रभु के पास पांच जिज्ञासा रखी। और पांच आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। भगवान ने उसके बहुत सुंदर जवाब दिये। इससे लक्ष्मण में विशेष जागृति आई। और विशेष जागरण होता है तब एक कसौटी आती है और वो है शूर्पणखा! शूर्पणखा सुंदरी का रूप लेकर आती है। लक्ष्मणजी उसको दंडित करते हैं।

ललित नरलीला का श्रीगणेश शूर्पणखा को दंडित करके किया गया। नाक-कान कट गये। शूर्पणखा खर-दूषण को बहकाती है। खर-दूषण राम से युद्ध में भीड़ता है और सब का निर्वाण होता है। रावण के पास जाकर

शूर्पणखा उसको उकसाती है। ढ़ाढ़स देकर रावण अपने भवन में चिंतन करता है कि खर-दूषण मेरे समान ही बलवान है। परमात्मा के सिवा उसको कोई नहीं मार सकता। ईश्वर ने मानव का रूप ले लिया है? यदि मनुष्य के रूप में ईश्वर है तो मैं वैर करूंगा। तामस देह में भजन नहीं करूंगा। तो सुबह में योजना बनती है। मारीच को लेकर रावण पंचवटी आता है। लक्ष्मणजी फल-फूल लेने गये। भगवान ने लीला योजित कर दी। स्वर्णमृग बनकर मारीच आता है और भगवान अवकाश देते हैं रावण को भी अपना कार्य करने का। आख़िर में भगवान मारीच को परमपद देकर लौटते हैं। रावण जानकीजी की छाया का अपहरण करके चलता है। जटायु ने कुरबानी दी। सीता को लेकर भागा रावण ऋष्यमूक पर्वत से निकलता है। बंदरों को बैठे देख जानकीजी कुछ वस्त्रालंकार फेंक देती है कि शायद प्रभु यहां आये तो मेरी निशानी ये बंदर लोग उसको दे सके। रावण अशोकवाटिका में जतन करके सीताजी को रखता है।

मृगवध करके प्रभु लौटते हैं। सीताविहीन आश्रम देखकर लक्ष्मणसह लीला करते हुए प्रभु रोये हैं। जानकी की खोज़ करते प्रभु आगे बढ़े। गीधराज जटायु मिले। सब वृत्तांत सुनाया। जटायु का संस्कार किया। और प्रभु आगे बढ़े। कबंध को निर्वाण देकर शबरी के आश्रम में पधारें। बड़ी वैष्णवी महिला है। नवोनव प्रकार की भक्ति जिसके हृदय में है ऐसी महिला से परमात्मा मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। शुभ संकेत जहां से मिले आदमी को लेना चाहिए। प्रतिष्ठा सब को देना लेकिन निष्ठा केवल अपने सद्गुरु पर ही रखना, इतना याद रखना।

पूछा है, 'बापू, मालसर में हम डोंगरे महाराज को मिले थे तब उन्होंने कहा था, वक्ता ब्राह्मण नहीं, वैष्णव होना चाहिए।' बापजी का ये प्यारा जवाब है लेकिन मुझे पूछा तो मैं इतना ही कहूंगा कि वक्ता में नौ वस्तु होनी चाहिए। एक, वक्ता की जबान में सत्य होना चाहिए। जब तक व्यासगादी पर हो तब तक तो सत्य ही होना चाहिए क्योंकि व्यासपीठ पर से असत्य नहीं चलता। किसीका सूत्र आप पर चढ़ा दो तो वाणी की देवी आप पर नाराज हो जायेगी। जो न आता हो, न कहे। दूसरा, हृदय में प्रेम होना चाहिए। प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और आंखों में करुणा होनी चाहिए। जबान में सत्य और हृदय में प्रेम। आंखों में करुणा। भगवतगुणगायक की तीन निष्ठा होनी चाहिए। पहली निष्ठा है, गुरुनिष्ठा तूटनी न चाहिए। गुरु, गुरु है। गुरु मिलने में कभी देर नहीं करता। जब हमें जरूरत होती है तब एडवान्स में हाज़िर होता है। दूसरी निष्ठा जो अपना ईष्ट ग्रंथ हो उसकी निष्ठा होनी चाहिए। अब मैं 'मानस'की कथा कहता हूं तो मेरी 'मानस'निष्ठा होनी चाहिए। जो जिसका ग्रंथ हो, मुबारक! वैष्णवों को 'भागवत' में, जैनों को 'आगम' में, बौद्धों को 'धम्मपद' में, ईस्लामीओं को 'कुरान' में, ईसाईओं को 'बाईबल' में निष्ठा होनी चाहिए। अपने शीख भाईओं को 'गुरुग्रंथ' में होनी चाहिए। लोग जो भी कहे; लोकमत और साधुमत साथ-साथ नहीं चलता। और राजनीति और वेदनीति कभी साथ-साथ नहीं चलती। राजनीति व्यभिचारिणी होती है, वेदनीति शाश्वत होती है। लोकमत बार-बार बदलता है, साधुमत कभी बदलता नहीं। ये शाश्वत और सांकेतिक है। थोड़ा विवेक बर्तो।

'रामचरित मानस' के 'सुन्दरकांड' में क्या लिखा है? हनुमानजी की पूंछ को प्रज्वलित करके जब हनुमानजी को जलाना शुरू किया तो राक्षसलोग हंसते हैं, किलकिलाट करते हैं, तालियां बजाते हैं, चरणप्रहार करते हैं! और हनुमानजी ने लंका जलाना शुरू कर दिया तो वोही लोग कहते हैं-

बानर रूप धरें सुर कोई।

'हम तो कहते थे, ये कोई देवता है।' ये लोकमत है। बहुत सावधानी से जीओ। ओशो ने ब्राह्मण की बड़ी प्यारी व्याख्या की। ब्राह्मण कभी निर्धन नहीं होता। ये ओशो का वक्तव्य है। ब्राह्मण अलोलूप होता है और

निर्लोभी होता है। ये कोई भी हो, ब्राह्मण है। धन त्यागने से हम उदार नहीं हो सकते, लोभ त्यागने से उदार हो सकते हैं। अलोलूप। 'भगवत्कथा' ने क्या-क्या नहीं दिया? सब कुछ दिया भारतीओं की विचारधारा को कोई भुजाओं में बांध नहीं सकता। मेरे देश का ऋषि कहता है, ये पूरी पृथ्वी मेरा परिवार है। मैं कोई छोटे-छोटे ग्रूप में हूं ही नहीं। मैं दीवारमुक्त आदमी हूं। मेरे नाम से कोई कहे तो मानना ही मत। मुझे कहना होगा, मैं डायरेक्ट कहूंगा। मेरे पास कथा लेने आओ तो सब डायरेक्ट आये, वाया-वाया नहीं। दरवाजा है ही नहीं। जहां कोइ सामाजिक दीवार नहीं, ऐसी व्यासपीठ है। मैं पांच घंटे प्रति दिन देता हूं। मेरे पास सीधे आओ। रिक्तपाणि आओ।

प्यार से बोला करो, प्यार से बुलाया करो।

ये बाप का घर है, आया-जाया करो।

'रामचरित मानस' ने हम को ये सिखाया है। चौदह साल के बाद राज्याभिषेक हुआ तो भगवान सब मित्रों को विदा देते हैं। गुह को विदा दी तो भगवान ने उसको कुछ ना दिया। बाकी सब को दिया। लेकिन उससे रामजी ने एक चीज़ मांगी। बेचारा रो पड़ा! रामजी ने बोला, तेरे साथ मेरा यही संबंध है। मैं मांगू, तू दे। बोले, क्या? मैं आप को क्या दूं?

तुम मम सखा भरत सम भ्राता।

सदा रहेहु पुर आवत जाता।।

तू अक्सर मेरे पास आया करना, आते-जाते रहना।

तो, मैं आप से निवेदन कर रहा था कि व्यक्ति को गुरु में निष्ठा होनी चाहिए। दूसरों के गुरु की हम निंदा न करे। दूसरा, ग्रंथनिष्ठा और तीसरा गादी की निष्ठा कि हम कहां बैठे है? तो, जबान में सत्य, हृदय में प्रेम, आंखों में करुणा। गुरु में निष्ठा, ग्रंथनिष्ठा और गादीनिष्ठा। आख़िरी तीन, एक तो 'भगवत्कथा' गाना है, कहना है तो समास या व्यास करने का विवेक कि प्रसंग कब शोर्ट कर दे, कब विस्तृतिकरण कर दे। ये विवेक वक्ता का बहुमूल्य लक्षण होना चाहिए। दूसरा विवेक आदमी का वृत्ति का विवेक, कथा चार्ज करने के लिए नहीं, खुद को रिचार्ज करने के लिए है। परमात्मा का चरित्र गाते हो, मांग ना हो, अपेक्षा ना हो। मेरा व्रत है, मैं कुछ न लूं ये बात और है। ये मेरा व्यक्तिगत निर्णय है। लेकिन कोई युवान कथाकार कथा करता है और कथा के बाद कोई उसके योगक्षेम के लिए व्यासपीठ को, पोथीजी को अर्पण करते हैं तो लेना चाहिए, कोई चिंता नहीं। लेकिन वृत्ति का विवेक बना रहे कि मेरी चाह नहीं। पहले मैं भी लेता था। तीसरा, वेश का विवेक होना चाहिए। सादगीसंपन्न वेश हो। विचार-वैभव होना चाहिए। वेश-विवेक आवश्यक है। व्यास-समास विवेक, वृत्तिविवेक और वेश-विवेक। ऐसे नौ सूत्र कथा गाते-गाते मेरी समझ में आते हैं।

तो, राम मार्गदर्शन लेते हैं शबरी से। शबरी ने प्रभु से कहा कि पंपा सरोवर जाईये, वहां आगे जाने के बाद सुग्रीव से मैत्री होगी और जानकीजी की प्राप्ति का मार्ग खुलेगा। शबरी जहां से लौटना ना पड़े ऐसे धाम में पहुंच गई। भगवान पंपा सरोवर के तट पर आये। वहां नारदजी आये। और नारद से सत्संग हुआ। नारद ने संतों के लक्षणों के बारे में जिज्ञासा की। परमात्मा ने संतों के लक्षण बतायें।

'किष्किन्धाकांड' में भगवान आगे बढ़ते हैं। सुग्रीव राम को देखकर आशंकित होता है। हनुमानजी को भेजता है, तपास करो। श्री हनुमानजी आते हैं। भक्त और भगवान की भेंट होती है। और फ़िर हनुमानजी कहते हैं-

नाथ सैल पर कपिपति रहई ।

सो सुग्रीव दास तव अहई ।।

'महाराज! पर्वत पर कपिपति सुग्रीव रहता है वो आप का दास है। आप इससे दोस्ती करो।' प्रभु को लेकर हनुमानजी उपर आये। अग्नि की साक्षी में दोनों की मैत्री बनाई गई। बालि का निर्वाण हुआ। सुग्रीव को राज्य, अंगद को युवराजपद मिला। प्रभु ने चातुर्मास प्रवर्षण

पर्वत पर किया। पर्वत की कंदरा में लक्ष्मणजी से ऋतु वर्णन करते हैं। वर्षाऋतु का वर्णन है। ऋतु और ऋत का वर्णन भगवान एक-एक पंक्ति में करते हैं। सुग्रीव राजभोग में प्रभु का कार्य भूल जाता है। लक्ष्मणजी सावधान करते हैं। सुग्रीव शरण आया और सीताशोध की योजना बनी। तीन दिशाओं में बंदर भालू भेज दिये गए। दक्षिण दिशा में अंगद की अगवानी में मार्गदर्शन दिया। जामवंत भी साथ में है और हनुमानजी भी है। 'मानस' में लिखा हैं-

पाछें पवन तनय सिरु नावा ।

सब से अंत में हनुमानजी चरण छूते हैं। प्रभु ने मुद्रिका दी। और अभियान शुरू होता है। स्वयंप्रभा की भेंट होती है। उसके बाद समंदर के तट पर संपाति मिलता है। संपाति ने कहा, सीताजी अशोकवन में अशोकवृक्ष के नीचे वाटिका में लंका में है। मैं गीध हूं, मेरी पंख जल गई है। लेकिन मेरी आंख सक्षम है। मैं नहीं जा पाउंगा। जो जायेगा वो सीता तक पहुंचेगा। और यहां सबने अपने-अपने बल की उद्घोषणा की। हनुमानजी बिलकुल चूप बैठे थे। जामवंतजी आह्वान करते हैं कि रामकार्य के लिए आपका जन्म है। और हनुमान पर्वताकार हो जाते हैं। जामवंत से सीख लेते हैं लंका जाने के लिए तैयार। वहां 'किष्किन्धाकांड' पूरा होता है। 'सुन्दरकांड' का आरंभ -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

श्री हनुमानजी महाराज लंका में प्रवेश करते हैं। विभीषण से भेंट हुई। जुगति बताई। हनुमानजी सीताजी तक पहुंच गए। बीच में रावण आया है। उसके बाद जानकी और हनुमानजी की भेंट होती है। अपना परिचय दिया। माँ ने हनुमानजी को आशीर्वाद दिया। फिर हनुमानजी ने कहा, 'मुझे भूख लगी है।' 'बेटे, रघुवीर को हृदय में धारण करके मधुर फल खाना।' श्री

हनुमानजी फल खाते हैं। रक्षक लोग विघ्न करने आया तो मार दिया। अक्षयकुमार का नाश हुआ। इन्द्रजित आया। हनुमानजी को बांधकर रावण की सभा में हाजर किया। बहुत लम्बी-चौडी चर्चायें हुई। आखिर में हनुमानजी को जलाने का दंड का एलान हुआ। हनुमानजी पूरी लंका को जला कर आते हैं। भगवान की भक्ति तक पहुंच जाता है उसको समाजरूपी लंका जलाने की कोशिश करती है। लेकिन जलानेवाला खुद जल जाता है, वैष्णव नहीं जलता। विभीषण वैष्णव है, वो नहीं जला।

हनुमानजी माँ से चूडामणि लेकर लौटते हैं। प्रभु से सब बात कहते हैं। फिर भगवान के संग अभियान चला। समंदर के तट पर परमात्मा की सेना आई है। यहां रावण की सभा में भी साशंकता आई है। विभीषण आया। हित की बातें कही। रावण ने विभीषण को निकाल दिया। विभीषण अपने सचिवों के साथ प्रभु के पास शरणागत होता है। प्रभु स्वीकार करते हैं। प्रभु ने विभीषण से मार्गदर्शन लिया। विभीषण ने कहा, तीन दिन समंदर के तट पर व्रतधारी बनकर बैठो। समंदर रास्ता दे तो हमें बल का प्रयोग नहीं करना है। तीन दिन बीत गए। समंदर अपनी जड़ता से उपर नहीं उठा। फिर भगवान ने जैसे तैयारी की, समंदर में ज्वाला उठने लगी! विप्र का वेष धारण कर मणियों का थाल लेकर सागर ठाकुर की शरण में आया, 'प्रभु आप जला दोगे तो असंख्य जलचर का नाश होगा। मेरी जड़ता के कारण आपको ये करना पड़ा! आपकी सेना में नल-नील नामक बंदर है उसके हाथ से पत्थर तैरते हैं, सेतुबंध की रचना करो।' प्रभु को जोड़ने का विचार अच्छा लगा। सेतुबंध का शुभ संकल्प हुआ।

'लंकाकांड' का आरंभ हुआ। सेतुबंध की रचना हुई। प्रभु ने उत्तम धरणी समझकर भगवान शिव की स्थापना की। मुनिवरों को बुलाया और परमात्मा ने वहां रामेश्वर भगवान की स्थापना की।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।

समंदर पार करके सुबेल पर्वत पर प्रभु का समाज आया। रावण मनोरंजन प्राप्त करने के लिए अखाडे में आया। प्रभु ने महारस भंग किया। दूसरे दिन संधि का प्रस्ताव लेकर राजदूत के रूप में अंगद राज्यसभा में गया। संधि विफल हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। भीषण संग्राम होता है। एक के बाद एक राक्षस निर्वाण को प्राप्त करते हैं। इकत्तीस बाण चढ़ाकर प्रभु ने रावण का निर्वाण सिद्ध कर दिया। रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया। पूरे जगत को आश्चर्य हुआ। मंदोदरी आई। प्रभु को प्रणाम करके राम की स्तुति की। रावण की क्रिया। विभीषण को राजपद दिया। सीयाजु को लौटाया गया। जानकीजी अग्नि में समाई थी। अग्नि से फिर बाहर आई मूल रूप में। और सीयाजु प्रभु के पास आई। फिर सबकी विदा और आखिर में पुष्पक विमान में बैठकर सखाओं को लेकर भगवान राम-जानकी लखन सह अयोध्या के लिए निकलते हैं। विमान से प्रभु ने

सेतुबंध रामेश्वर का दर्शन करवाया। कुंभज आदि ऋषिनायकों को प्रभु मिलते-मिलते लौट गए।

हनुमानजी को अयोध्या भेज दिये गए। शृंगबेरपुर गंगा के तट पर विमान उतारा गया। उपेक्षित समाज दौड़ आया। केवट गुहादि को प्रभु ने गले लगाए। केवट को कहा, अब मैं क्या दूं? केवट रो पड़ा! 'प्रभु, ये तो योजना थी कि आप दुबारा मिले। मैंने आपको नौका में बिठाया। आप मुझे विमान में बिठाकर अयोध्या ले जाय।' ठाकुर उसको विमान में संग लेते हैं। यहां 'लंकाकांड' पूरा होता है।

'उत्तरकांड' के आरंभ में हनुमानजी-भरतजी की भेंट होती है। आनंद ही आनंद व्याप्त हो गया! हनुमानजी लौटे। प्रभु का विमान सरजू के तट पर अवध की पावन भूमि पर उतरान लेता है। पूरी अयोध्या प्रभु के दर्शन के लिए उमटी है। राम-लखन-जानकी नीचे उतरे। बंदरगण थे वो मनुष्य का रूप लेकर नीचे उतरे कि रामकथा ये मानव बनाने की फोर्म्यूला है। भरतजी दौड़े, दंडवत् किया। दोनों भाई मिले तो कोई निर्णय नहीं कर पाता कि वनवास किसका था!

गुरु को दंडवत् किया। भगवान ने अपने धनुष-बाण एक और रख दिए। मानो विश्व को संकेत दिया कि जब तक शस्त्र की जरूरत थी तो मैंने भी उठाया। लेकिन रामराज्य शस्त्र से नहीं, शास्त्रवेत्ता के चरण पकड़ ने से आयेगा। हिंसामुक्त विश्व हो। गुरु का परिचय मित्रों को दिया और मित्रों का परिचय गुरुजी से करवाया। प्रभु अपनी ऐश्वर्यलीला से सबको व्यक्तिगत योग्यता के अनुरूप मिले-

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।

अपनी-अपनी योग्यता अनुसार परमात्मा सबको दर्शन देते हैं।

प्रभु पहले कैकेयी के भवन गए। माँ को संकोचमुक्त किया। सुमित्रा के पैर छुए। कौशल्या के चरणों में प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को पूछा कि आज ही राजतिलक कर दे? कल का भरोसा नहीं! दिव्य सिंहासन मंगवाया गया। और चारों भाईयों ने स्नान किया। सास ने जानकीजी को स्नान करवाके शृंगार किया। पृथ्वी को, माताओं को, जनता को, गुरुओं को, ब्राह्मणजनों को, मित्रों को, दिशाओं को, भास्कर को और सभी को प्रणाम करके भगवान राम और जानकी दिव्य राजसिंहासन पर बिराजमान हुए हैं। त्रिभुवन को रामराज्य और प्रेमराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने तिलक किया -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

त्रिभुवन में जयजयकार हुआ। कौशल्याजी चारों भाईयों को देखकर 'सुत बिलोकि हरषीं महतारी।' ये है कौशल्या! औदार्य का नाम है कौशल्या। कौशल्या महिला नहीं है, पृथ्वी की-मानवजात की महिमा है। आरती उतारी है। शिवजी पधारे। स्तुति करके कैलास पधारे। वेद पधारे। स्तुति करके ब्रह्मभवन गए। छः मास बीत गए। सभी मित्रों को बुलाकर राम ने सन्मान किया। एक हनुमानजी को छोड़कर सबको प्रभु ने विदा दी। हनुमानजी को नहीं लौटना पड़ा, क्योंकि हनुमानजी का पुज्य क्षीण नहीं हुआ था।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा।

समय बीता। जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया। ऐसे तीनों भाईयों के घर भी दो-दो पुत्र हुए। गोस्वामीजी ने रघुकुल के वारिस का नाम देकर कथा को वहां विराम दिया। सीता का दूसरी बार का त्याग, ये विवादवाली बात को तुलसी छोड़ देते हैं। तुलसी चाहते हैं, लोकहृदय में राम-सीता विराजमान है वो कभी बिछड़े ना। ये छबि अखंड हो। उसके बाद बाबा कागभुशुंडिजी का चरित्र है। गरुडजी भुशुंडिजी के शरण में जाते हैं। और कागभुशुंडि अपना जीवनवृतांत सुनाते हैं। आखिर में ज्ञान-भक्ति के तफावत की चर्चा करते हैं। सात प्रश्न गरुडजी पूछते है। ये सात प्रश्न मानो 'रामचरित मानस' के सातों सोपान का सार है। सप्त प्रश्न का उत्तर दिया है। सातवां प्रश्न बहुत गंभीर है, मानसिक रोग के बारे में आप कहो। शारीरिक रोग के डोक्टर भी मिलते हैं। मनोरोग का क्या किया जाय? ये फैलता जा रहा है! काम, क्रोध, इर्ष्या, तृष्णा ये सब स्वतंत्र विषय है। हमारे मानसिक रोग का वैद कौन? तुलसीजी कहते हैं, मानसिक रोग सबमें है, लेकिन वो विरल है जो जान लेते हैं कि मुझे में इर्ष्या है, मुझ में काम है, मुझ में लोभ है।

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय के आसा।।

तुलसीजी कहते है, मानसिक रोग का वैद है कोई सद्गुरु, कोई बुद्धपुरुष जहां हमारी निष्ठा हो। शर्त इतनी है कि उसके वचन में विश्वास किया जाय। उदार सद्गुरु तीन बार बोल देते हैं कि ये करो, त्रिसत्य करने के बाद भी किसी को विश्वास ना आये तो सद्गुरु चूपचाप दो आंसू गिराकर साधक के लिए प्रार्थना करता है। मैं तो कहूं, सद्गुरु का एक संकेत काफी है। इस में हम समझ जाय। इसमें हमारा भला है। भरोसा ही भजन है। भगवान भजन से बड़ा नहीं है। भजन के बच्चे का नाम है परमात्मा। भजन मानी भक्ति, भजन मानी प्रेम। शंकर कहते हैं-

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

'हे गरुड, भगवान की भक्ति संजीवनी जडीबुट्टी है और अनुपान है श्रद्धा।' साधक के जीवन में ये भक्ति-श्रद्धा होती है तो साधक नीरोगी होने लगता है। धीरे-धीरे सद्बुद्धि की भूख लगती है। विषयाकांक्षा मिटने लगती है। विमल वैराग में फिर वो न्हाता है। आखिर में कागभुशुंडि ने रामकथा को विराम दिया और गरुड कंठ फुलाकर वैकुंठ गए।

कैलास की ज्ञानपीठ से बाबा भोलेनाथ पार्वती से कथा को विराम देते हैं। पार्वती कहती है, मैं कृतकृत्य हो गई। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी से कथा पूरी की कि नहीं ये स्पष्ट नहीं है। आखिर में तुलसीदास अपने मन को और संतों को कथा सुनाते हुए कथा को विराम देते हैं। मैं भी जब ये रामकथा 'मानस-नृत्य' को विराम देने की और हूं तब आप सब ने प्रसन्नता से श्रवण किया; मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं -

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।

धर्म मानी सत्य। अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं। दूसरों का हित ये धर्म है। वेद-शास्त्रों सब में सेवाधर्म प्रसिद्ध है। मैं कहता हूं, सत्य-प्रेम-करुणा ये धर्म का निचोड है। नवदिवसीय रामकथा 'मानस-नृत्य' का ये फल मैं ओशो को, ऐसी एक चेतना को समर्पित करता हूं, जिसने धर्म को नृत्य थोड़ा सिखाया; तो ओशो की इस चेतना को मेरी ओर से मैं कथा का सुक्रित समर्पित कर देता हूं।

लोकमत और साधुमत साथ-साथ नहीं चलता। और राजनीति और वेदनीति कभी साथ-साथ नहीं चलती। राजनीति व्यभिचारिणी होती है, वेदनीति शाश्वत होती है। लोकमत बार-बार बदलता है, साधुमत कभी बदलता नहीं। ये शाश्वत और सांकेतिक है। 'रामचरित मानस' के 'सुन्दरकांड' में क्या लिखा है? हनुमानजी की पूंछ को प्रज्वलित करके जब हनुमानजी को जलाना शुरू किया तो राक्षसलोग हंसते हैं, किलकिलाट करते हैं, तालियां बजाते हैं, चरणप्रहार करते हैं! और हनुमानजी ने लंका जलाना शुरू कर दिया तो वोही लोग कहते हैं, 'बानर रूप धरें सुर कोई।' 'हम तो कहते थे, ये कोई देवता है।' ये लोकमत है।

मानस-मुशायरा

इन बिगड़े दिमागों में भरे अमृत के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो हम पागल ही अच्छे हैं।
– स्वामी रामतीर्थ

राशिद किसे सुनाउं गली में तेरी गज़ल,
उनके मकां का कोई दरीचा खुला न था।
– राशिद

न गरज किसी से न वास्ता,
मुझे काम अपने ही काम से।
तेरे ज़िक्र से तेरी फ़िक्र से
तेरी याद से तेरे नाम से।
– जिगर मुरादाबादी

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझ पे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे चलना ही नहीं,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।
– परवीन 'शाकिर'

वो शख्स अपने आप को काबिल समझता है।
बड़ा अज़ीब है नुकशान को हांसिल समझता है।
– मासुम गाजियाबादी

अब ना काहु से बोलेंगे,
तन्हाई में रो लेंगे।
नींद तो कहां आयेगी फ़राज़,
मौत आई तो सो लेंगे।
– अहमद फ़राज़

क्वचिदन्यतोऽपि

इक्कीसवीं सदी का रामराज्य सत्य, प्रेम, करुणा के त्रिकोण पर रचना चाहिए

'आज के संदर्भ में रामराज्य' विषयक मोरारिबापू का प्रेरक प्रवचन

रामराज्य के बारे में आप सभी से बातें करनी हैं। रामराज्य की पूरी जो परंपरा है अयोध्या में, उसमें हम तीन विभाग कर सकते हैं। मूलत: तो ये सूर्यवंश है, जिस परंपरा में रामराज्य आया, राम आए। उसका जो मूल उद्‌गम हैं, वो तो सूर्य हैं। इसलिए मूल में तो ये सूर्यवंश कहलाता हैं। लेकिन संशोधन होता चला आया। इसी वंश में कई राजाएं हुए। बड़ी नामावलि हैं, उसमें यहां जाने का अवसर भी नहीं, समय भी नहीं। लेकिन उसी परंपरा में एक ऐसा सम्राट हुआ, जिसको हम रघु के नाम से जानते हैं। और सूर्यवंश तो रहा ही मूल में, लेकिन ज्यादा प्रचलित हुई बात रघुवंश की। रघुवंश आया, मैं इसको इस रूप में देखता हूं कि सूर्यवंश की जो प्रणाली रही होगी उसमें संशोधन हुआ होगा। और संशोधन होते-होते रघु के समय तक बहुत संशोधन हुआ होगा तब रघुवंश की स्थापना हुई। रघुवंश से हम आगे बढ़े, तो महाराज दशरथजी आए। अच्छे महाराजा, इसमें तो कोई शंका ही नहीं। तुलसी ने भूरिश: प्रशंसा की है। लेकिन कमजोरियां भी है और ये होती हैं इन्सान में। और राम को वनवास न दिया होता। एक रात में पूरी योजना बदल जाती है, आप जानते हैं और राम दशरथ की इच्छा अनुकूल दूसरे दिन

सूर्यास्त पर अयोध्या की गादी पर राजा बन गए होते तो बिलकुल स्पष्ट हैं कि ये शासन भी रघुवंश माना जाता, रघु का राज्य अथवा तो दशरथ का राज्य माना जाता; रामराज्य नहीं माना जाता। रामराज्य के लिए जरूरी था राम-वनवास। और ये पूरी ईश्वर की इच्छा से ही समझो योजना बनी और भगवान राम ने रामराज्य की एक बहुत सुंदर व्यवस्था संसार को प्रदान की।

तुलसीदासजी के 'उत्तरकांड' में रामराज्य कैसा था, कैसी व्यवस्था थी उसकी भूरिशः चर्चा हुई है। लेकिन एक नदी होती है तो समय की गणना में अपना प्रवाह बदलती है। प्रवाहवान वस्तु अपनी गति बदलेगी ही। आप सब जानते हैं मुझे सुननेवाले कि मैं स्वयं परंपरा का स्वीकार करता हूं। परंपरावादी नहीं हूं, लेकिन परंपरा मुझे प्रिय लगती है। लेकिन विश्व के सामने मेरा ये विचार कायम रहा कि परंपरा हंमेशा प्रवाही रहनी चाहिए, जड़ नहीं होनी चाहिए। जड़ परंपरा आदमी को संकीर्ण कर देती है, आगे बढ़ने नहीं देती।

तो, दशरथ के पुत्र के रूप में दूसरे ही दिन राम राजा बन गए होते तो रामराज्य नहीं हो पाता। दशरथपुत्र का राज्य अथवा तो रघु का राज्य अथवा तो सूर्य का राज्य माना जाता। राम के काल में जरूरत थी रामराज्य की और अभी-अभी अरुणभैया ने जैसे कहा कि जैसे मैं कहता रहता हूं कि राम मेरी दृष्टि में सत्य का पर्याय है।

तो, भगवान राम आए। उसने जो राज्य की व्यवस्था की उसका बहुत वर्णन है। लेकिन आपका ध्यान गया होगा कि राम वन गए। राज्याभिषेक होनेवाला था सुबह, नहीं हो पाया। चौदह साल बाद राज्याभिषेक अवध में हुआ। लेकिन सभी संतों ने, सभी मनीषियों ने, सभी विद्वानों ने इस बात को कुबूल की हैं कि रामराज्य का आरंभ अयोध्या में नहीं हो सकता, पहले कहीं ओर जगह उसका श्रीगणेश होना चाहिए था। और रामराज्य का श्रीगणेश हुआ था शृंगबेरपुर में। निषादों की बस्ती के बीच, एक वंचित, उपेक्षित समाज उनके बीच रामराज्य की नींव डाली गई थी। और फिर चौदह साल में उसको क्रमशः राज्यप्रणाली अथवा तो ये विचारधारा को विकसित की गई थी। आखिर भगवान राम आए, रामराज्य की स्थापना हुई। मनीषियों ने ये भी कहा कि रामराज्य का अर्थ है प्रेमराज्य। जैसे अभी कहा गया कि गांधीबापू जिसको आदर्श का रूप कहते थे, सुराज्य कहते थे। मैं बहुत जिम्मेवारी के साथ कहता हूं। आज और उस काल के रामराज्य की जो स्थिति है; और आज कितनी सालें बीत गई! हमारी गणना के अनुसार त्रेतायुग में ये घटना घटी। फिर द्वापर गया, पूरा कृष्ण का काल गया। फिर कलियुग में बुद्ध का काल भी गया और आज हम इक्कीसवीं सदी में है। कितना गंगा में पानी बह गया! और गांधीबापू ने मूलतः जो रामराज्य था उसमें भी बहुत संशोधन किया और इस संशोधन के साथ मैं सहमत हूं।

रामराज्य के वर्णन में ऐसा लिखा हैं कि-

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

वर्णाश्रम में सब लोग रत रहते थे। उस समय वर्णाश्रम धर्म को बिलकुल आदर के साथ निभाते थे। गांधीबापू आये तो उसने तो वर्ण का निषेध कर दिया। ये संशोधन है। और अब मुझे इस विषय पर बोलना है तो मैं ये भी कहूंगा कि वर्ण की जो रामराज्य की बात है कि ये ब्राह्मण, ये क्षत्रिय, ये वैश्य, ये शूद्र। ये हमारी परंपरा में मानो रहे, लेकिन भेद के रूप में नहीं रहना चाहिए। व्यवस्था के रूप में रहना चाहिए। ब्राह्मण को आप बोर्डर पर नहीं भेज सकते। ये उनके स्वभावजन्य रूप में अनुकूल नहीं है। उसके स्वभाव में जो है, वो युद्ध के अनुकूल गुण नहीं है। क्षत्रिय के पास ब्राह्मण के कर्म हम नहीं करवा पाते। यदि कोई क्षत्रिय करे तो मना नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण फौज में जाए तो मना नहीं करना चाहिए। लेकिन उसका पूरा का पूरा दायित्व शायद न निभा पाए। वैश्य, व्यापारी लोग; जो किसानी करते हैं, गौ-रक्षा करते हैं, उसको भी आप बोर्डर पर नहीं भेज सकते। शायद टेन्ट का सौदा कर सकता है! व्यापार का कुछ दूसरा केन्द्र

खोल सकता है! ये उनके अनुकूल नहीं है। विज्ञान इन्सान के जो पारंपरिक जिन्स है उसको मूल से परिवर्तित कर दे, तो खबर नहीं! कुछ संभव हो, लेकिन विज्ञान के द्वारा सहजता को दूसरी अवस्था में घूमा देना ये विकृति होगी। जो चौथी पंक्ति में गितने हैं सेवक समाज, दलित कहते हैं। विनोबाजी ने बहुत अच्छा कहा था, जो अपनी परंपरा में जो लक्षण, जो मानसिकता, जो एक विद्या अपनी परंपरा में लेके आए हैं, उसको उसीका ही काम सौंपा जाए तो सफल रहेगा। और समाज के लिए उपयोगी होगा। मेरा भी ये स्पष्ट मानना है कि वर्णाश्रम ये भेद के रूप में नहीं रहना चाहिए। बिलकुल ये प्रासंगिक है ही नहीं। और रामराज्य ये प्रस्थापित करे तो इक्कीसवीं सदी ये कुबूल करे कि नहीं, मुझे खबर नहीं! अथवा तो शायद मैं तो न कहूं। तुलसी ने कहा, एक ऐसा रामराज्य उस समय आया कि -

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।

एक ऐसा समाज निर्मित हो रहा था कि भेद खत्म हो गये थे। रामराज्य की बात में भेदतत्त्व निकल जाना चाहिए। व्यवस्था होनी चाहिए। और गांधीबापू तो बिलकुल वर्णव्यवस्था से विपरीत रहे। और वर्णव्यवस्था प्रासंगिक लगती भी नहीं। 'आश्रम' शब्द बड़ा प्यारा है, अच्छा है। वो रामराज्य में वर्णाश्रम निज-निज धर्म; आश्रम मानी आप जानते हैं कि एक समय का खंड संयम में, ब्रह्मचर्य में, विद्या-अध्ययन में जाए। दूसरा एक खंड सांसारिक भोगविलास, आयुष्य का तीसरा एक खंड आदमी घर में रहे तो भी उसकी पीठ घर की ओर हो और मुख वन की ओर हो यानी कुछ तपस्या, कुछ साधना। और चौथा खंड हमने संन्यास माना है। लेकिन उस आश्रम व्यवस्था में भी तकलीफ होने लगी कि जो चौथे आश्रम में पहुंचे संन्यासी वो दूसरेवाले, तीसरेवाले, पहलेवाले की आलोचना करते थे! श्रेष्ठ और निम्न का दावा शुरू हो चुका था। एस समय में आश्रम व्यवस्था के रूप में होना चाहिए। गांधीजी का ही शब्द है 'आश्रम व्यवस्था'; और गांधी स्वयं अपने स्थान को 'आश्रम' का नाम देते थे। जैसे ही 'साबरमती आश्रम।'

तो बाप, सूर्यवंश से लेकर बहुत संशोधन होता रहा। संशोधन होना चाहिए। आज इक्कीसवीं सदी में हम है तो आज के हमारे बच्चों, हमारे युवानों, हमारे बुजुर्ग, अनेक भाषा हमारी, अनेक जाति, अनेक प्रांत और पूरे विश्व को हम बाहों में लेना चाहे तो खबर नहीं, कितनी विविधता है! इन सब में इक्कीसवीं सदी का रामराज्य सूत्र कैसे बन सकता हैं? ये सभी मणियों को पिरोकर कैसा रामराज्य एक सूत्र बन जाए ताकि एक सुंदर ये माला माँ भारती को, माँ धरती को आज के विश्व को कंठ में डालकर हम उसकी शोभा बढ़ा सके! ये रामराज्य का वर्णन है। अस्सी प्रतिशत आज लागू होता है, गांधीबापूवाला रामराज्य जो उनकी परिकल्पना है। वो भी गांधी को भी आज इतने साल हो गए हैं, उसमें भी संशोधन होना चाहिए और गांधी भी राजी होंगे। क्योंकि समय का बहुत बड़ा फांसला है। यद्यपि गांधी के सत्य को कोई नहीं बदल सकता, वो तो शाश्त है। आज भी गांधी के विचारों पर उंगलियां उठती है! जब आज़ाद भारत को प्रधानपद देना था तब वो चर्चाएं चली, तब कई विद्वान लोग जो कहते हैं कि उस समय जो गांधीबापू ने पंडितजी के नाम के बदले सरदार का नाम कुबूल किया होता तो ज्यादा अच्छा होता आदि, आदि; छोड़ो! राष्ट्र की बहुत प्रदेश कमिटियां सरदार पटेल के पक्ष में थी। लेकिन गांधीबापू की एक चिठ्ठी से कोंग्रेस कारोबारी में परिवर्तन होता है।

आप युवान भाई-बहन ज्यादा जानते हैं कि टाईटेनिक जो स्टीमर डूब गई; डूबने के बाद जो हुआ। उसकी बनी घटना। उसका जो मूल कप्तान था उस पर मुकद्दमा चला आंतरराष्ट्रीय लेवल पर। दस साल के बाद निर्णय आता है! ये हकीकत है। उसको अदालत में पेश किया गया कि आपने उस समय जो निर्णय लिया; न लेते अथवा तो ऐसा निर्णय लेते तो ये घटना न घटती।

अदालत इस निष्कर्ष पर आती हैं कि इसकी दंडात्मक सजा होनी चाहिए। और फिर जो फैसला दिया गया! उस आदमी ने कहा कि मुझे यदि आदरणीय अदालत दो मिनट बोलने का वक्त दे, तो मुझे कुछ बात करनी है। वो कहता है कि मुझे इतना ही कहना है कि इस घटना के निर्णय करने में माननीय अदालत को दस साल लगी, तब भी ये निर्णय सही है कि गलत है अल्लाह जाने! मुझे उस समय केवल तीन मिनट में निर्णय करना था! मैं हाजिर हूं दंड के लिए! कभी-कभी गांधीजी पर जो उंगलियां उठती है उसमें मुझे ये टाईटेनिकवाली बात मदद करती है कि इस महापुरुष को चंद लम्हों में उसका निर्णय करने की आई थी वो घड़ी। लेकिन गांधीजी स्वयं इतने प्रवाहमान रहे कि वो कोई बात जड़ता से नहीं पकड़ लेते थे। उसने रामराज्य की उसी धारा को सालों के बाद चर्चा की है। आज उसमें भी थोड़ा सुधार होना चाहिए। और मुझे लगता है कि महात्मागांधी बापू नाराज नहीं होंगे। आज के संदर्भ में कैसा रामराज्य प्रासंगिक हो सकता है? उस समय तो लिखा है -

बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप बिषमता खोई।।

एक एसा समाज स्थापित हुआ था, कोई किसी से बैर नहीं करता था। और रामकृपा से विषमता नष्ट हो चुकी थी। मैं समझता हूं कि कोई किसी से बैर न करे, बड़ा मुश्किल काम है! बिषमता न रहे वो आवकारजन्य विचार है। लेकिन शायद समाज में विषमता रहे मानो, मैंने जैसे पहले कहा, कोई भी परिवर्तन बिषमतामूलक, भेदमूलक नहीं होना चाहिए। उस काल में आखिरी व्यक्ति को राम गले से लगाते हैं। उसी काल के भगवान राम के गुरु वशिष्ठ निषाद को गले लगाने में झिझक रहे थे! भरत एक ऐसा संत प्रवेश करता है। उसी विचारधारा को बदलने के लिए भरत रथ छोड़के दौड़ते है! वशिष्ठजी रथ नहीं छोड़ पाए! रथ का अर्थ है यहां धर्म। वशिष्ठजी धर्म की कुछ ज़ंजीरें नहीं तोड़ पाए! भरत जैसे एक संत ने रथ छोड़ दिया मानी धर्म से छलांग लगाई! वो आखिरी आदमी को हृदय से लगाते हैं। भरत के इस कदम के बाद चित्रकूट पहुंचते-पहुंचते वशिष्ठजी को भी इस अंतिम व्यक्ति को गले लगाना पड़े। कैसे भी समाज की ये विषमता, ये भेद मिटे। गांधीबापू ने कोशिश की। हमें भी इतने सालों के बाद ओर कोशिश करनी चाहिए। सबको इसके बारे में सोचना ही नहीं क्रियान्वित किया जाए।

मैं कथाओ में कहता हूं, हमारे पास वचनात्मक बहुत है, रचनात्मक कुछ भी नहीं! हमारी सबकी दशा एक ही है! हमें खबर सब कुछ है, लेकिन बदलने की बात आती है तो हमारी बातें केवल वचनात्मक रह जाती है, रचनात्मक नहीं रहती! पूरे राष्ट्र में रामराज्य की परिकल्पना; विचार तो बहुत अच्छे हैं। और विचार में क्यों दरिद्रता करें? हमारे देहातों में कहा जाता है विनोद में कि एक भाई ने एक मित्र से कहा, अमरिका जाने का विचार है, कितना खर्चा होता है? बोले, विचार करने में कोई खर्चा नहीं होता! करते रहो! बहुत-सी बातें विचार में चली गई! इक्कीसवीं सदी मांगती है एक्शन।

अब मुझे आपको जो कहना है कि संशोधनयुक्त रामराज्य कैसा होना चाहिए? आज की रामराज्य की ब्लूप्रिन्ट कैसी होनी चाहिए? आज के रामराज्य के लिए हमारे पास कौन-सी फोर्म्यूला होनी चाहिए? पहला सूत्र कि ज्यादा विचार न किए जाय। विचारों की तुलना में भले दस प्रतिशत कदम उठाया जाय उसमें पहला कदम। पूरे भारत में, हर प्रांत में, पूरी पृथ्वी पर रामराज्य आए तो वधाई के योग्य है। दस प्रतिशत कदम का मतलब कम से कम हमारे परिवार में रामराज्य आए। एक्शन हमारे पारिवारिक जीवन में होना चाहिए। मुझे कथा में एक जिज्ञासा की गई, 'जीवन के कितने प्रकार है?' मैंने कहा, तीन प्रकार। एक तो हमारा पर्सनल जीवन। सबका अपना-अपना जीवन होता हैं। दूसरों को उसमें चंचूपात नहीं करना चाहिए। दूसरी हमारी फेमिली लाईफ, हमारा पारिवारिक संविधान। तीसरा हमारी सोशियल लाइफ होती है। सामाजिक हमारा दायित्व। संस्थाओं का भी

उद्देश वही होगा कि हम भी कुछ सामाजिक समस्याओं में हमारी ओर से कुछ योगदान दे। तो, हमारा सामाजिक दायित्व है; हम समाज से जुड़े हैं। हम तो समाज से क्या, सोसायटी से क्या, हम तो सूरज से जुड़े हैं। हमारी सोसायटी के तो हम अंग है। इसलिए दुष्यन्तकुमार एक युवान ग़ज़लकार, बहुत छोटी उम्र में उसका देहविलय हो गया, उसने कहा-

हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

एक नया प्रवाह, एक नया संशोधन होना चाहिए। मैं 'रामायण' के गायक के रूप में बहुत सावधानी और जिम्मेवारी के साथ बोलता हूं। रामराज्य अच्छा था, लेकिन आज का रामराज्य जिसमें सीता की अग्नि कसौटी हो, नहीं होना चाहिए। किसी बहन-बेटी को अग्नि से गुज़रना पड़े? नहीं, आजका रामराज्य नहीं हो सकता। मेरे देश की महिला को परिवार का एक आदमी राम की और ऊंगली उठा दे और भगवान राम सीता को त्यागने को तैयार हो जाए? इक्कीसवीं सदी का रामराज्य कुबूल नहीं करेगा। और नहीं करना चाहिए। मैं रामकथा गाता हूं। मुझे तो ये बात कुबूल कर लेनी चाहिए कि शास्त्र में लिखी है और मैं मान लूं? नहीं, उसमें परिवर्तन होना ही चाहिए। रामराज्य में शंबूक वध हुआ था उस काल में; शूद्र कहते थे, उसको तपस्या करने की मनाई थी। और एक ऐसे आदमी ने इतनी कठिन तपस्या की उस काल के शासन ने उसको दंडित किया! इक्कीसवीं सदी का रामराज्य ऐसा नहीं होना चाहिए। यहां तपस्या का सबको अधिकार होना चाहिए। यहां सबको विद्या का अधिकार होना चाहिए। लोकमान्य तिलक भी इस बात को कुबूल करके गए। उस काल में रहा होगा, ठीक है।

'महाभारत'काल तक एसी बातें हुई जो आज प्रस्तुत नहीं हो सकती। पांच बेटे आते हैं और कहते हैं, देख माँ, हम क्या लाये हैं? और माँ कमरे में बैठे-बैठे कहे, जिसको लाये हो तुम पांचों भाई मिलकर भोगो! इस बात को पांडवों ने मान ली! द्रौपदी पांच पति में बंट गई! समय का जो रिवाज हो, माँ को कम से कम देखना तो चाहिए, मेरे पुत्र क्या लाये हैं? चलो, माँ ने तो बोल दिया लेकिन धर्मराज, उसको अंदर जाके बोलना चाहिए, माँ, तुने तो कह दिया बांटकर भोग करो, लेकिन माँ ये तो एक व्यक्ति है! चलो, पांडव भी नहीं बोले, आज्ञांकित है, माना, लेकिन कम से कम द्रौपदी तो आवाज़ लगाती, मैं कोई पदार्थ नहीं हूं कि आप बंटवारा करे! वो तो अग्निप्रसवा थी। क्या एसी स्थिति आज प्रासंगिक है? आज की युवापीढ़ी, आज का समाज उसको कुबूल नहीं कर सकता। परंपरा में माननेवाले चोट लगे तो क्षमा मांगनी चाहिए। ऐसे दस प्रतिशत कदम उठाने चाहिए।

मैं कथाओं में कहता हूं कि आपका दसवां हिस्सा समाज की आखिरी व्यक्ति के लिए निकालना चाहिए, तो निकालते भी हैं। चलो, ये न निकाल पाए तो कम से कम दस प्रतिशत अपने परिवार में, पर्सनल लाईफ में, उसके लिए दस कदम तो आगे बढ़े। सामाजिक लाईफ में आगे बढ़े। यदि हम बिलग हो गए सामाजिक जीवन से तो ठीक नहीं है। कोई साधु-संत की बात अलग है। गांधी भी संत थे। वो हिमालय नहीं गए। विनोबाजी हिमालय जाने के लिए ओलरेडी निकले थे। लेकिन गांधीबापू का संदेश आया, 'आपको समाज की सेवा करनी है और जिस रामराज्य की परिकल्पना मैंने की है; आप मेरे से प्रज्ञावान हैं। मैं इतना शास्त्र का वेत्ता नहीं हूं। आप हिमालय न जाए। आप समाज के बीच रहे।' और जहां से उनको संदेश मिलता है, उनके पैर मुड़ जाते हैं कि मुझे हिमालय नहीं जाना है। हमारा सामाजिक दायित्व हैं। सामाजिक दायित्व इक्कीसवीं सदी के रामराज्य में हमें पूरा करना पड़ेगा।

चौथा जीवन है, राजकीय जीवन। आज तो 'राम' शब्द आते ही सांप्रदायिकता का लेबल लग जाता है! ये सोच बदलनी होगी। कोई आक्रमक धर्म हो तो उस

पर बिनसांप्रदायिक या सांप्रदायिकता लेबल नहीं लगता! और 'राम' शब्द आते ही सांप्रदायिकता का लेबल लग जाता है! ये सोच बदलनी चाहिए। सत्य, प्रेम, करुणा कभी सांप्रदायिक नहीं हो सकते। सत्य, प्रेम, करुणा हिंदु, मुसलमान, ईसाई नहीं हो सकते। जिसको रामराज्य लाने की तीव्रता है उसको भी विशाल पैमाने परे सोचना पड़ेगा। हमारे गुजरात में साहित्यकार हुए मनुभाई पंचोली, उनका तखल्लुस था 'दर्शक'। थे देहाती पर बड़े विचारक थे। उसने कहा कि भारत में नागरिक कम है, वोटर्स बहुत है। राजकीय जीवन संतुलित हो, जिसमें स्व से ज्यादा सर्व का विचार हो। यही गांधी के रामराज्य की परिकल्पना थी। हमारे ऋषिमुनियों ने कहा, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।'

पांचवां जीवन होता है, अर्थप्रधान जीवन। अर्थ की आलोचना नहीं करनी चाहिए। आर्थिक जीवन को भी रामराज्य में अपना योगदान देना चाहिए। और हो रहा है। मैं राजी होता हूं। छठ्ठा जीवन है धार्मिक जीवन। प्रत्येक का जीवन बिलग होता है। लेकिन अपना धार्मिक जीवन दूसरे के धार्मिक जीवन से टकराए ना। राम ने रामराज्य से पहले सेतु बताया था। जोड़ने की विचारधारा राम की विश्व को एक संदेश दे गई। धार्मिक जीवन में रामराज्य लाने के लिए आप अपने ग्रूप में रहो जरूर, लेकिन एक परमधर्म है जो सूर्य की भांति है।

सातवां जीवन है, आध्यात्मिक जीवन। आध्यात्मिक जीवन के तीन सूत्र। विनोबाजी ने भी बहुत प्रकाश डाला। लेकिन 'रामचरित मानस' से जो मुझे प्राप्त हुए हैं, वो तीन है - सत्य, प्रेम और करुणा। इक्कीसवीं सदी का रामराज्य इस त्रिकोण पर रचना चाहिए। जितनी मात्रा में सत्य का पालन हो; सत्य प्रासंगिक ही होता है। जागरण सबका सत्य है। सपना एक आभास है। आज के रामराज्य में राजा और प्रजा दोनों जितनी मात्रा में कर पाए, सत्य का निर्वाह करे। आपके जीवन में जितना हो सके, सत्य के करीब रहे। रामराज्य केवल सत्ता पर बैठे हुए नहीं ला सकते, उसकी नींव तो शृंगबेरपुर में लगनी चाहिए। आखिरी इन्सान उसकी नींव रखे। उसके लिए सत्य के करीब जीना होगा। उसी रामराज्य को आज इक्कीसवीं सदी में प्रासंगिक करने के लिए प्रेम चाहिए। सबके बीच प्रेम होना चाहिए, करुणा होनी चाहिए। कुछ न कर सके तो कम से कम इस त्रिकोण पर हमारी सोच केन्द्रित होनी चाहिए। एक तो दस प्रतिशत एक्शन हमसे शुरू हो। भेदमूलक विषमता का नाश होना चाहिए। व्यवस्था के रूप में हो जरूर, लेकिन उसके पीछे भेद न हो। ये केवल वचनात्मक नहीं, रचनात्मक हो, बहुत आवश्यक है।

तो मेरे भाई-बहन, आज आपके साथ रामराज्य के बारे में बातें करने का कुछ अवसर मिला। मेरा मूल सूर पूरे प्रवचन का यही है, सूर्यवंश का राज्य संशोधन होते रघुवंश हो चुका था। रघुवंश का राज्य संशोधन होते दशरथ का राज्य बना था। उसके बाद यही परंपरा रामराज्य में संशोधित हुई। उसके बाद वही स्थिति को गांधी ने संशोधित किया। उसके बाद हम भी थोड़ा कदम उठाए। हम भी कुछ अपना योगदान दें। आओ, धर्मपीठ से, राजपीठ से, सामाजिक पीठ से, संस्थाओं की पीठ से, जो-जो संस्थाएं काम करती हो, हर जगह से कोशिश करें। कम से कम पूरे सरोवर को दूधमय न बना दे, लेकिन रंग तो बदले। और रंग बदलेगा तो अंग भी बदलेगा। और अंग बदलेगा तो पूरा विश्व इस रंग में रंग सकता है। कुछ बातें आपके साथ करने का अवसर मिला। इक्कीसवीं सदी का रामराज्य लाने का हम रचनात्मक प्रयत्न करें और हनुमानजी हमें इस रचनात्मक प्रयत्न में बल दे, बुद्धि दे, विद्या दे। उर्ध्वबाहु होकर हम कह सके कि -

चिदानंद रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

('आज के संदर्भ में रामराज्य' विषयक 'नझरुल मंच', कोलकता में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ४-१०-२०१५)

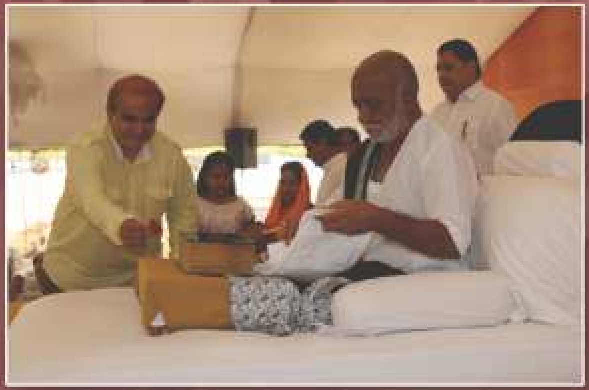

॥ जय सीयाराम ॥